कथा-कुसुमाञ्जलि

—•—

सम्पादक

डा० भागीरथ मिश्र एम. ए., पी-एच. डी.
रीडर हिन्दी विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

—•—

प्रकाशक:
राजस्थान पुस्तक मन्दिर
जयपुर

आमुख

कहानी की परिभाषा

कहानी की अनेक परिभाषाएँ दी गई हैं। अमेरिका के प्रसिद्ध कहानीकार एडगर एलन पो के मतानुसार कहानी वह गद्य-कथा है, जिसके पढ़ने में आध घण्टे से लेकर घण्टा-दो घण्टा तक लग सकता है। किन्तु कहानी की यह परिभाषा वास्तव में अपूर्ण और सदोष है, क्योंकि इससे कहानी की आत्मा का पता नहीं चलता। चेखव ने जीवन के एक खंड को कहानी की संज्ञा दी है। श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की राय में भी 'घटनात्मक इकहरे चित्रण का नाम कहानी है और साहित्य के अन्य सभी अङ्गों के समान रस उसका आवश्यक गुण है।' श्री रायकृष्णदास ने प्रसाद की कहानी-सम्बन्धी मान्यता को उद्धृत करते हुए एक बार लिखा था कि 'आख्यायिका में सौंदर्य की एक झलक का रस मिलता है।' प्रेमचन्द्रजी की दृष्टि में 'कहानी वह रचना है, जिसमें जीवन के किसी एक अङ्ग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है। उसके चरित्र उसकी शैली, उसका कथा विन्यास, सब उसी एक भाव को पुष्ट करते हैं। सबसे उत्तम कहानी वह होती है, जिसका आधार कोई मनोवैज्ञानिक सत्य हो।'

इस प्रकार कहानी की बहुत-सी परिभाषाएँ दी जा सकती हैं। किन्तु हिन्दी के सुप्रसिद्ध आलोचक स्व० बाबू श्यामसुन्दरदास ने कहानी की जो परिभाषा दी थी, वह संक्षिप्त और सारगर्भित है। बाबू साहब के मतानुसार "कहानी एक निश्चित लक्ष्य या प्रभाव को लेकर लिखा जाने वाला नाटकीय आख्यान है।" आख्यायिका पढ़ कर किसी एक तथ्य की छाप

पाठक पर अवश्य पड़नी चाहिए। सिंह द्वारा पीछा किये जाने पर जितनी तेजी से हम दौड़ते हैं अथवा डाकगाड़ी जिस प्रकार मामूली स्टेशनों पर न ठहर कर यथासम्भव शीघ्र ही गन्तव्य-स्थल पर पहुँच जाना चाहती है, ठीक उसी प्रकार कहानी की समस्त घटनाएँ किसी एक लक्ष्य की ओर उन्मुख होनी चाहिए। नाटकीयता से उनका तात्पर्य सजीवता से ही जान पड़ता है। अतः संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कहानी वह संक्षिप्त नाटकीय आख्यान है, जिसमें संवेदना की एकता (Unity of impression) मिलती है।

कहानी का शिल्प-तंत्र

१ कथानक

सामान्यतः कहानी के ६ तत्व माने जाते हैं—कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देश काल, भाषा और शैली तथा उद्देश्य। कुछ आलोचक कहानी में कथावस्तु का सबसे अधिक महत्त्व देते हैं। उनका कहना है कि यदि सुनाने के लिए कोई कथा ही न हो, तो फिर कहानी में रह ही क्या जाता है? किन्तु केवल कथामात्र से ही कहानी आकर्षक नहीं बनती, निम्नलिखित गुणों के कारण कोई भी कथानक आकर्षक बन सकता है —

१. घटनाओं की संश्लिष्ट योजना अथवा कार्य की एकता
२ घटनाओं में प्रवाह
३ कुतूहल या औत्सुक्य
४. चरम सीमा
५. घटनाओं की सम्भाव्यता
६ कार्य कारण शृङ्खला
७ जटिलता का अभाव

कहानी की सब घटनाएँ परस्पर सम्बद्ध होनी चाहिए। उनका क्रम प्रकार शृङ्खला-बद्ध होना चाहिए, जिससे एक घटना दूसरी घटना से

लिए पृष्ठभूमि या संकेत का काम दे सके। इसे ही 'घटनाओं की संश्लिष्ट योजना' अथवा 'कार्य की एकता' कहते हैं। कहानी में कोई भी घटना ऐसी नहीं होनी चाहिए जिसे निरर्थक कहा जा सके। यदि किसी घटना के निकाल लेने पर भी कहानी की सम्पूर्णता को क्षति नहीं पहुँचती तो ऐसी कहानी कलात्मक नहीं समझी जाती।

कभी कभी कुछ लेखक कहानी लिखते समय प्राकृतिक-दृश्यों आदि का वर्णन करने में अनावश्यक विस्तार कर देते हैं, जिससे कहानी के कार्य व्यवहार को क्षति पहुँचती है और घटनाओं का स्वाभाविक प्रवाह रुक जाता है।

कुछ कहानियाँ ऐसी होती हैं जिनका परिणाम हम पहले से ही जान लेते हैं। एक-दो पृष्ठ पढ़ कर ही हम यह अनुमान कर लेते हैं कि अमुक कहानी का अंत यह होगा। इस प्रकार की कहानियाँ दोषपूर्ण होती हैं। कहानी में कौतूहल और औत्सुक्य का अंश प्रारम्भ से अन्त तक बना रहना चाहिए। चेस्टरटन के शब्दों में 'कहानी में जो रहस्य हो, उसे कई भागों में बाँटना चाहिए। पहले छोटी-सी बात खुले, फिर उससे कुछ बड़ी और अन्त में मुख्य रहस्य खुल जाय। लेकिन हर एक भाग में कुछ न कुछ रहस्योद्घाटन अवश्य होना चाहिए जिससे पाठकों की इच्छा सब कुछ जानने के लिए बलवती होती चली जाय।'

कौतूहल और औत्सुक्य की दृष्टि से कहानी के प्रारम्भ और अन्त का भी बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। कुछ लेखक कथोपकथन द्वारा कहानी प्रारम्भ करते हैं, कुछ वर्णन द्वारा तथा कुछ आकस्मिक घटना द्वारा। वर्णनात्मक शैली में लिखना सुगम अवश्य है किन्तु जो कहानियाँ आकस्मिक घटना या वार्तालाप से प्रारम्भ होती हैं, उनकी ओर पाठक का ध्यान एकदम आकर्षित हो उठता है। वार्तालाप से प्रारम्भ होने वाली कहानियों के लिए यह देखना आवश्यक है कि कथोपकथन बहुत लंबा और निरर्थक न हो। दो चार पंक्तियों के वार्तालाप अथवा किसी आकस्मिक घटना-द्वारा कहानी का प्रारम्भ कर देना प्रभावोत्पादक होता है।

कहानी का अधिकांश आकर्षण प्रारम्भ पर ही निर्भर रहता है। जो कहानी प्रारम्भ से ही नीरस हो, उसे कौन पाठक पढ़ना चाहेगा ? ध्यान आकर्षित करना, उत्सुकता उत्पन्न करना, मूल-भाव के विषय में संकेत करना तथा कहानी को गतिशील बनाना—ये कहानी के प्रारम्भ के मुख्य उद्देश्य हैं। किन्तु यहाँ भी यह उल्लेखनीय है कि आरम्भ का कहानी के साथ विशेष सम्बन्ध रहता है; वह केवल चमत्कार-प्रदर्शन के लिए नहीं लिखा जाता। कहानी के प्रारम्भ द्वारा भावी घटनाओं का हमें यत्किंचित् आभास भले ही मिल जाय, किन्तु यह आभास ऐसा न हो कि हम कहानी के अन्त के विषय में कोई निर्णय पहले ही कर लें; नहीं तो कहानी में शिथिलता आये बिना नहीं रहेगी। जहाँ तक हो सके, कहानी का आरम्भ नाटकीय होना चाहिए। यही बात कहानी के अन्त के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। कुछ लेखक कहानी के अन्त में ऐसी बात दिखलाते हैं जिसका पाठकों को स्वप्न में भी खयाल न था। इस प्रकार का अन्त बहुत प्रभावोत्पादक होता है, किन्तु इस प्रकार की आकस्मिकता में अस्वाभाविकता नहीं होनी चाहिए। कहानी में चमत्कार लाने के लिए कुशल कलाकार अन्त में इस प्रकार का घुमाव देते हैं कि चित्त चमत्कृत हो उठता है। समीक्षकों के मतानुसार 'कहानी का डङ्क उसकी पूँछ में चमकना है' अर्थात् जिस प्रकार बिच्छू का डङ्क उसकी पूँछ में होता है, ठीक उसी प्रकार कहानी का सारा रहस्य, उसका समस्त प्रभाव उसके अन्त में निहित रहता है।'

प्रेमचन्द जैसे कुछ लेखकों की कहानियाँ शान्तिपूर्वक स्वाभाविक रूप से समाप्त हो जाती हैं। इस प्रकार की कहानियों में पाठक बीती घटनाओं पर विचार नहीं करते, किन्तु प्रसाद जैसे कुछ कहानीकार ऐसे हैं, जिनकी कहानियों का अन्त व्यंजनात्मक अथवा ध्वन्यात्मक होता है। ऐसा अन्त हमारे हृदय को झकझोर डालता है और थोड़ी देर के लिए हमें चैन नहीं लेने देता।

औत्सुक्य के प्रसंग में कहानी की चरम सीमा पर भी विचार कर लेना चाहिए। 'कहानी में घटनाओं का क्रम इस प्रकार स्थिर होना

चाहिए कि पाठक पर उसका प्रभाव लगातार बढ़ता ही चला जाय और उसे एक चरम सीमा की ओर ले जाय, जहां पहुँचते ही या जहां पहुँचने के पश्चात् कहानी समाप्त हो जानी चाहिए। जिस स्थिति में कहानी का प्रभाव इस चरम सीमा पर पहुँच जाता है, वही तीव्रतम स्थिति कहलाती है और जिस घटना में उस तीव्र स्थिति का सन्निवेश होता है, वही कहानी की प्रधान घटना होती है। कथानक की दृष्टि से तीव्र स्थिति का नाटकीय होना और उसमें आश्चर्य-तत्त्व का होना अनिवार्य है। साधारणतया आश्चर्य-तत्त्व का आधार घटनाओं का आशा या अनुमान के प्रतिकूल होना ही होता है। कभी कभी वही चरित्र अपराधी के रूप में आता है, जिस पर कोई भूलकर भी सन्देह न कर सकता था। ऐसी हालत में हमारे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता। कहानी में जिस स्थान पर रोचकता केन्द्रीभूत होकर चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाती है, वही तीव्रतम स्थिति कहलाती है। इस तीव्रतम स्थिति अथवा चरम सीमा पर पहुँच जाने पर कहानी अपने आप समाप्त हो जाती है। कहा जाता है कि "चरम सीमा तक तो लेखक कहानी लिखता है, उसके बाद वह अपने आप लिखी जाती है।" इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि कहानी में कल्पना का स्थान प्रमुख होता है, किन्तु वह कल्पना सम्भाव्य होनी चाहिए। सम्भाव्य न होने से कहानी की रसात्मकता जाती रहती है।

कथानक में कारण-कार्य शृङ्खला का निर्वाह होना भी आवश्यक है। घटनाओं के पहले कारणों का उल्लेख होना चाहिए। 'आंधी एकाएक नहीं आती, पहले तेज हवा, साथ ही पीला भूरा आकाश और तत्पश्चात् उत्तरोत्तर बढ़ता कोलाहल सुनाई पड़ता है।'

कथानक को आकर्षक बनाने के लिए यह भी आवश्यक है कि वह जटिल न हो उसकी सरलता ही उसको चित्ताकर्षक बना सकती है।

श्रीविनोदशङ्कर व्यास ने कथानक को चार भागों में विभक्त किया है:-

१. प्रस्तावना-भाग

२ मुख्यांश
३ चरम सीमा (Climax)
४ पृष्ठ-भाग

प्रस्तावना—भाग में कहानी के मुख्य पात्रों का तथा उनकी परिस्थिति का परिचय दे दिया जाता है। साथ ही कहानी की प्रधान घटना का भी आभास मिलता है। परिवर्तन की स्थिति से मुख्यांश प्रारम्भ होता है। यहीं से कहानी उत्तरोत्तर तीव्र होती जाती है। शीघ्र ही ऐसी स्थिति आती है, जहाँ से घटनाओं का एक निश्चित क्रम हो जाना चाहिए। इसी को चरम सीमा या क्लाइमेक्स (Climax) कहते हैं। चरम सीमा के बाद पृष्ठ भाग में कहानी का अन्त दिखाया जाता है।

कई कहानियों में प्रस्तावना-भाग प्रारम्भ में न आकर बाद में आता है। यह अँग्रेजी-पद्धति पर लिखी जाने वाली आख्यायिकाओं की नकल है। प्रेमचन्दजी के मतानुसार इससे कहानी अनायास ही जटिल और दुर्बोध हो जाती है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इस क्रम-परिवर्तन से साधारण स्वाभाविक घटनाओं द्वारा भी कौतूहल का विकास किया जा सकता है। कथानक की दृष्टि से कहानी लिखने की सामान्यतया निम्न-लिखित पद्धतियाँ हैं :—

१. ऐतिहासिक पद्धति—इसमें लेखक एक इतिहासकार की भाँति कहानी लिखना प्रारम्भ करता है। यह एक प्रकार की वर्णनात्मक शैली है।

२. आत्म-चरित्र पद्धति—इसमें लेखक प्रथम पुरुष में कहानी को जीवनी के रूप में लिखता है। इसमें कहानी सत्य घटना का बाना इनकर पाठकों के मन को आकर्षित कर लेती है। किन्तु इस पद्धति में लिखी हुई कहानी तभी सफल होती है, जब कहानी में पात्रों की संख्या अधिक न हो। अनेक पात्रों का सजीव चित्रण इस पद्धति में नहीं किया जा सकता।

३. पत्रपद्धति—इसमें सारी कहानी पत्रों द्वारा ही कही जाती है, जिसमें घटनाओं का सरल, स्वाभाविक विकास नहीं दिखलाया जा सकता। डा० रामकुमार वर्मा के शब्दों में "पत्र-कहानी में जीवन नहीं रहता वह प्राणहीन होकर घटनाओं के पीछे घीसटती चलती है।" इसमें शैली की विशिष्टता तो रहती है पर एक समन्वित प्रभाव नहीं बन पाता।

४. डायरी पद्धति—इसमें डायरी की भाँति कहानी कही जाती है, किन्तु यह पद्धति भी कहानी के लिए उपयुक्त नहीं। डायरी की सकुचित सीमा के अन्दर लिखी जाने के कारण इस प्रकार की कहानी भी लेखक की स्वतन्त्रता पर अनावश्यक बन्धन डाल देती है।

कहानियों में पहले वर्णनात्मक अंश की ही प्रधानता रहती थी। 'एक राजा था, एक रानी थी' इस प्रकार सीधे-सादे ढङ्ग से कहानियाँ प्रारम्भ हो जाती थी, अन्त में क्या हुआ, यह बताकर वे समाप्त हो जाती थी। किन्तु आज की आख्यायिकाएँ केवल आख्यान न होकर 'नाटकीय आख्यान हैं' जिनमें कथा के विकास के लिए नाटक की सी सजीवता और कलात्मकता अपेक्षित समझी जाती है।

सङ्कलन-त्रय

समय, स्थान तथा कार्य की एकता 'सङ्कलन त्रय' के नाम से प्रसिद्ध है। समय की एकता से तात्पर्य यह है कि नाटकीय आख्यान भाग को रंगमञ्च पर प्रदर्शित करने में जितना समय लगे, वास्तविक जीवन में भी उसके घटित होने में उतना ही समय लगे, इस ओर नाट्यकार को अपनी दृष्टि रखनी चाहिए। इस काल निर्देश की सीमा अरस्तू द्वारा २४ घण्टे (Single Revolution of the sun) निर्धारित कर दी गई थी।

'स्थान की एकता' से अभिप्राय यह है कि नाटक में ऐसे किसी भी स्थान पर कार्य-व्यापार नहीं होना चाहिए, जहाँ नाट्य निर्दिष्ट समय में नाटक के पात्र आनायान करने में असमर्थ हों।

कार्य की एकता' का उल्लेख पहले किया जा चुका है। इस एकता से तात्पर्य यह है कि नाटक मे ऐसी किसी भी घटना का समावेश नहीं होना चाहिए, जिसका नाटक की प्रमुख घटना से सम्बन्ध न हो।

यूनानियो के सङ्कलन त्रय का नियम वास्तव मे नाटक-सम्बन्धी नियम था, किन्तु फ्रेंच लेखको ने आख्यायिकाओ के सम्बन्ध मे भी इस नियम का प्रयोग किया, किन्तु आजकल सङ्कलन-त्रय के सिद्धान्त का पूर्ण प्रयोग न नाटक में आवश्यक समझा जाता है, न आख्यायिकाओ मे। हाँ, कार्य की एकता का सिद्धान्त अवश्य ऐसा है, जिसका पालन नाटक और आख्यायिका दोनो के लिए समान रूप से आवश्यक है।

लौकिक-अलौकिक

कुछ आलोचक कहते हैं—'अलौकिक नहीं चाहिए, जो अलौकिक कर्तव्य सुझाये, वैसी बात हमे चाहिए। हम तो धरती पर रहते हैं, हमें यहाँ की कहो।' इसके उत्तर मे जैनेन्द्रजी का कहना है—'रहते होंगे धरती पर, लेकिन देखते आसमान भी हैं। धरती पर रहना है, तो आँख क्यो माथे में है वह पैर के तलुओ मे क्यो नही है ? मैं किसी ऐसे व्यक्ति को नही जानता, जो मात्र 'लौकिक' हो, जो सम्पूर्णता से शारीरिक धरातल पर ही रहता हो। अरे, सबके भीतर हृदय है, जो सपने लेती है। सबके भीतर आत्मा है, जो जगती रहती है। जिसे शस्त्र छूता नही, आग जलाती नहीं। सबके, भीतर वह है जो अलौकिक है। मैं वह स्थल नही जानता, जहाँ 'अलौकिक' न हो। वहाँ वह मरा है, जहाँ परमात्मा का निवास नही है ?"

यदि आत्मा-परमात्मा की बात छोड दें तो भी यह मानना होगा कि मनुष्य केवल यथार्थ से सन्तुष्ट नही होता, वह आदर्श के भी स्वप्न देखता है। दु ख-दग्ध जगत् और आनन्दपूर्ण कल्पना-लोक, इन दोनो का सम्मिलन ही साहित्य की सृष्टि करता है।

२. चरित्र-चित्रण

कहानी का दूसरा प्रधान अङ्ग है चरित्र चित्रण। चरित्र-चित्रण की सुन्दरता का यह अर्थ नही है कि जिस पात्र का चित्रण किया जाय वह सात्विक वृत्तियो वाला ही हो, पात्र अच्छा हो या बुरा हो, कुशल कलाकारके हाथो में पड़कर उसका चित्रण बड़ा स्वाभाविक तथा सुन्दर बन पड़ता है।

चरित्र चित्रण में कुशलता प्राप्त करने के लिए लेखक को जीवनद्रष्टा होना चाहिए। जीवन की वास्तविक परिस्थियो का अध्ययन करने वाले कलाकार ही पात्रो का सजीव चित्र प्रस्तुत कर सकते है, और आख्यायिका मे तो पात्र के जीवन की झलक ही प्रदर्शित की जाती है, इसलिए कहानी लेखक के लिए चरित्र-चित्रण के सम्बन्ध मे विशेष सतर्कता की आवश्यकता होती है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से उस लेखक को सफल समझना चाहिए जिसके द्वारा निर्मित किसी पात्र की अमिट छाप हमारे मानस पट पर अङ्कित हो जाती है।

आख्यायिकाओ मे चरित्र-चित्रण के लिए अनेक ढङ्ग काम मे लाये जाते हैं, जिनमें से निम्नलिखित उल्लेखनीय है :—

१. विश्लेषण पद्धति—इसमे लेखक स्वय पात्र की मुख्य विशेषताओ को पाठकोंके समक्ष रख देता है किन्तु यह पद्धति वाछनीय नही जान पड़ती। पाठक पात्र के आचरण को देखकर उसके सम्बन्ध में जो अपनी धारणाएँ बनाते हैं, वे लेखक के विश्लेषण द्वारा किये हुए चित्र से कही अधिक स्पष्ट और प्रभावोत्पादक होती हैं। हाँ, स्वाभाविक क्रिया कलाप एवं वार्तालाप के बीच कही-कही मन स्थिति का विश्लेषण करना आवश्यक होता है।

२ वार्तालाप-पद्धति—इसमे एक पात्र दूसरे पात्र से बातचीत करता है और उन दोनो के वार्तालाप से ही कहानी के पात्रो का चरित्र स्पष्ट होता चलता है। आधुनिक कलात्मक कहानियो मे चरित्र-चित्रण की शैली विशेष उपयुक्त समझी जाती है। प्रसिद्ध कहानीकार 'कौशिकजी इसे कहानी में प्रमुख स्थान देने के पक्ष में थे।

२ किसी कहानी के अन्य पात्र किसी पात्र विशेष के सम्बन्ध में क्या कहते है इसके द्वारा भी चरित्र चित्रण में सहायता मिलती है।

३. स्वगत पद्धति—मे लेखक पात्र के विचारो का वर्णन मात्र न करके उसके मुख से ही उसकी मनोदशा का चित्रण करवाता है। आज कल चरित्र के मनोवैज्ञानिक पक्ष को प्रकाश मे लाने के लिए इस पद्धति का बहुत कुछ आश्रय लिया जाता है।

४. कार्य पद्धति—इसके द्वारा चरित्र चित्रण करने वाले कलाकार पात्र के कार्यों को ही सबसे अधिक महत्व देते हैं। विभिन्न परिस्थितियो मे पात्र क्या करता है, इसे देखकर ही उसके चरित्र का पता लगाया जा सकता है।

उक्त पद्धतियो के उल्लेख का यह अर्थ न समझा जाय कि एक कलाकार चरित्र चित्रण की किसी एक ही पद्धति का आश्रय लेता है अथवा एक कहानी मे केवल एक ही पद्धति का प्रयोग देखने मे आता है।

चरित्र चित्रण के सम्बन्ध मे कभी-कभी यथार्थवाद और आदर्शवाद को लेकर भी ऊहापोह की जाती है, किन्तु जैसा प्रेमचन्दजी का विचार है—यदि कहानियो में केवल यथार्थवादी पात्रो का चित्रण किया जाय तो उससे हमारा जी ऊबने लगता है क्योंकि यथार्थवादी पात्रो को तो, जिनमे अपनी दुर्बलताएँ मिलती हैं, हम अपने प्रतिदिन के जीवन मे देखते ही हैं इसके विरुद्ध यदि केवल आदर्शवादी पात्रो का चित्रण किया जाय, जिनमें यथार्थ जीवन का स्पन्दन न हो तो उससे भी तृप्ति नही होती। इसलिए यथार्थवाद और आदर्शवाद का सुन्दर समन्वय ही वह मध्यम मार्ग है, जो कहानीकार के लिए वाछनीय कहा जा सकता है।

आधुनिक आख्यायिकाओ में केवल वर्गगत चरित्र ही नही मिलते, अनेक ऐसे चरित्र भी मिलते हैं जिनमें उनकी वैयक्तिक विशेषताओं के दर्शन होते हैं। किन्तु इस प्रकार की विशेषताएँ मनोवैज्ञानिक पुस्तकों अथवा कल्पना पर आश्रित न होकर जीवन की वास्तविकताओ पर आश्रित होनी चाहिए।

कथोपकथन

कथोपकथन भी कहानी का एक महत्वपूर्ण अङ्ग है। कथोपकथन हमें पात्रों के स्वभाव और चरित्र के विषय में ज्ञान प्राप्त करने में सहायता पहुँचाता है। अत्यन्त मार्मिक और वास्तविक कथोपकथन द्वारा एक अद्भुत चमत्कार की सृष्टि की जा सकती है और पाठक स्वत उससे अपना निष्कर्ष निकाल लेता है। उत्तम कलाकारों के हाथो में पड़कर कथोपकथन अत्यन्त मनोवैज्ञानिक वस्तु का रूप धारण कर लेता है जिससे भावों की बहुत सुन्दर व्यंजना हो पाती है। कथोपकथन के सम्बन्ध में निम्नलिखित तथ्यों पर दृष्टि रखना आवश्यक है —

१ कथोपकथन यत्र-तत्र कहानी के बीच में बिखरा होना चाहिए जिससे कहानी में कहीं भी शिथिलता न आने पावे।

२ कथोपकथन संक्षिप्त होते हुए भी 'नावक के तीर' की भाँति मर्मस्पर्शी वाला होना चाहिए। कथोपकथन में अनावश्यक विस्तार होने से पाठक का मन ऊबने लगता है।

३ कहानी के लम्बे परिच्छेदों के बाद सजीव और स्वाभाविक कथोपकथन का सहायता से पाठकों की कहानी में रुचि बनी रहती है। कहानी की बिखरी हुई घटना को सगठित कर कथानक की गति को अग्रसर करने में भी कथोपकथन सहायता पहुँचाता है।

४ मनोविकारों के आविर्भाव और तिरोभाव के अनुसार ही कथोपकथन में भी आरोह और अवरोह होना चाहिए।

५ कथोपकथन का कोई भी वाक्य निरर्थक नहीं होना चाहिए। अप्रयोजनीय कथोपकथन मनोरंजक होने पर भी वाञ्छनीय नहीं समझा जाता।

६ कथोपकथन, कथानक के विकास और चरित्र विश्लेषण का महत्वपूर्ण साधन होना चाहिए। कथोपकथन को वार्तालाप

बनाने के लिए कुछ लेखक इस प्रकार के उपायों का अवलम्बन करते देखे जाते हैं :

(क) जब एक वक्ता भाषण कर रहा हो तब दूसरा बीच ही में बोलने लगता है जिससे उसके चरित्र पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। उसके अमर्ष की ज्वाला इतनी तीव्रतम होती है कि वह पूरी बात भी नहीं सुनना चाहता।

(ख) कभी कभी लेखक एक पात्र से किसी प्रश्न का उत्तर दिलाने के स्थान में उसमें एक नया प्रश्न पूछने की जिज्ञासा का आविर्भाव कर देते हैं। इससे कथानक का विकास होता है।

इस प्रकार स्वाभाविक, सजीव एवं चुभते हुए कथोपकथन कहानी को सप्राण बनाते हैं।

देश-काल

इसका चित्रण उपन्यास में तो होता ही है, कहानी में भी उसकी आवश्यकता रहती है, यद्यपि उससे कम। घटना तथा पात्रों से सबन्धित स्थान काल और वातावरण का चित्रण कथाकार भी करता है, किन्तु उपन्यास की अपेक्षा संक्षेप से। देश, काल तथा वातावरण का चित्रण बहुत स्वाभाविक आकर्षक और यथासम्भव पात्रों की मानसिक स्थिति के अनुकूल होना चाहिए।

वर्णन-शैली

कहानी की वर्णन शैली अत्यन्त रोचक, प्रवाहमयी और प्रभावपूर्ण होनी चाहिए। अपनी वर्णन शैली द्वारा गूढ़ से गूढ़ भावनाओं की और सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में ही लेखक की सफलता है। लक्षणा, व्यंजना आदि शब्द-शक्तियां तथा अलंकार और मुहावरे इत्यादि वर्णन शैली के सवर्धन के लिए सहायक उपकरण के रूप में प्रयुक्त किये जा सकते हैं। हास्य, व्यंग्य, प्रवाह और चित्रोपमता इत्यादि शैली की अनेक विशेषताएं हो सकती हैं।

वर्णन-शक्ति और विवरण शक्ति दोनो ही वर्णन शैली के लिए आवश्यक है। संगति और प्रवाह को एकता भी कहानी के लिए आवश्यक है। सभी तत्वों के सम्मिश्रण से कहानी मे कौतूहल और औत्सुक्य की भावना को जागृत रखा जा सकता है। भाषा की सजीवता और शक्तिमत्ता कथा में गतिशीलता उत्पन्न कर देती है। वर्णन शैली की उत्कृष्टता के लिए यह आवश्यक है कि भाषा सजीव और मुहावरेदार हो, भाषा में भी चित्रोपमता के लिए अलङ्कारों का प्रयोग सुविधापूर्वक हो सकता है।

विचार, भाव और अनुभूतियाँ अपनी अखण्ड सत्ता रखती हैं, वे त्रिकाल मे एक ही रही हैं किन्तु उनकी अभिव्यक्ति मे अन्तर होता है। वर्णन शैली की नवीनता ही लेखक की मौलिकता और नवीनता होती है। अपने युग के आदर्शों और भावनाओं से वह प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। वस्तुतः वह अपने युग के आदर्शों को ही अभिव्यक्त करता है।

कहानियों के विषय के अनुरूप ही लेखन-शैली भी परिवर्तित हो जाती है। व्यंग्यप्रधान कहानियों की शैली व्यंग्यपूर्ण होती है और भावात्मक तथा वर्णनात्मक कथाओं मे भावुकता और विवरण की प्रधानता रहती है। किन्तु प्रत्येक लेखक अपनी वैयक्तिक शैली का विकास स्वयं करता है, वह अपने आदर्शों के अनुरूप ही अपनी भाषा तथा वर्णन शैली का निर्माण करता है। हिन्दी में प्रसाद तथा प्रेमचन्द की शैलियाँ अपनी वैयक्तिक रुचियों की परिचायका हैं।

उपर्युक्त तत्त्वों के अतिरिक्त भावुकता, संवेदना, अलौकिकता और हास्य को भी कहानी के आवश्यक तत्व के रूप मे स्वीकार किया जाता है। किन्तु कहानी के विभिन्न भागों में इसका प्रयोग किस मात्रा में तथा किस रूप में किया जा सकता है, इसका निर्णय एक कुशल कलाकार ही कर सकता है। वस्तुतः संवेदना और भावुकता तो साहित्य मे कलात्मक सौंदर्य के लिए आवश्यक हैं। अतः वह कथा, जिसमे भाव तत्व और संवेदना की कमी हो, साहित्य के अन्तर्गत गृहीत नहीं की जा सकती।

ये तत्व अपने वास्तविक रूप में सम्पूर्ण साहित्य के ही आधार हैं।

कहानी का उद्देश्य

कहानी का उद्देश्य निश्चित रूप से मनोरञ्जन कहा जा सकता है किन्तु इस मनोरञ्जन के पीछे भी एक ध्येय वर्तमान रहता है। यह ध्येय जीवन की किसी मार्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति में ही निहित है। उपन्यासकार या महाकाव्य का कवि यदि सम्पूर्ण जीवन की व्याख्या करता है, तो कहानीकार मानव मन के उन तथ्यों को या गहरी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करता है जोकि जीवन के अन्तरतम से सम्बन्धित होती हैं। वस्तुतः कहानीकार मानव-जीवन से सम्बन्धित समस्याओं पर प्रकाश डालता है, किन्तु यह उद्देश्य आधुनिक कहानियों में अभिधेय न होकर व्यंजित ही होता है। 'हितोपदेश' या उसी ढङ्ग पर लिखी गई प्राचीन कहानियों में कथा कहने के साथ साथ उपदेश की मात्रा भी विद्यमान रहती थी। आधुनिक कहानियाँ विशिष्ट उद्देश्य की प्रतिपादिका होती हुई भी उपदेशात्मक नहीं होतीं।

आजकल की कहानियों में चरित्र चित्रण की प्रधानता रहती है, अतः किसी भी उद्देश्य की अभिव्यक्ति उसमें स्पष्ट नहीं होती। चरित्र-चित्रण के रूप में या तो मानसिक विश्लेषण किया जाता है या फिर लेखक जीवन-सम्बन्धी अपने दृष्टिकोण को प्रकट करता है। जैसे आज का प्रतिवादी लेखक समाज के वर्तमान संगठन में आमूल-चूल परिवर्तन चाहता है, वह सर्वहारा वर्ग के सुख-दुःख, आशा-निराशा और उनकी जीवन-सम्बन्धी अनुभूतियों को साहित्य का विषय बनाकर क्रांतिकारी भावनाओं के प्रचार द्वारा उनमें जागृति उत्पन्न करना चाहता है। कथा-साहित्य में उनकी यही क्रान्तिकारी विचार-धारा विद्यमान रहती है और उसके साहित्य का उद्देश्य भी क्रान्ति का प्रचार ही रहता है। कुछ कहानीकार वर्तमान सामाजिक समस्याओं की विषमता को चित्रित करके उनके प्रति अपने सुधारवादी दृष्टिकोण को अपनी कहानियों में चित्रित करते हैं। मनोविश्लेषक कथाकार मानव-मन की

गहराई में बैठ कर उसकी रहस्यमी प्रवृत्तियों की व्याख्या को अपनी कहानी का उद्देश्य बनाता है। अत कहानी का उद्देश्य मनोरंजन अवश्य स्वीकार किया जा सकता है किन्तु मनोरञ्जन के अतिरिक्त जीवन-सम्बन्धी विभिन्न दृष्टिकोणों की व्याख्या भी उद्देश्य के साथ-साथ वर्तमान रहती है।×

स्वरूपात्मक वर्गीकरण

स्वरूप की दृष्टि से आधुनिक कहानियो को घटना प्रधान, चरित्र-प्रधान, वर्णन प्रधान, भाव प्रधान, वातावरण प्रधान आदि अनेक वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है। घटना प्रधान कहानियो मे कौतूहल और औत्सुक्य को जागृत करना ही कहानीकार का प्रमुख लक्ष्य रहता है। चरित्र प्रधान कहानियो में जिन पात्रो का चित्रण किया जाता है, वे पात्र अपनी सजीवता और स्वाभाविकता के कारण पाठको की स्मृति मे स्थायित्व प्राप्त कर लेते हैं। आजकल घटना प्रधान कहानियो की अपेक्षा चरित्र प्रधान कहानियाँ श्रेष्ठ समझी जाती है। वर्णन प्रधान कहानियो मे देश, काल आदि के रङ्गीन वर्णनो द्वारा ही प्रभाव उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जाता है। भाव-प्रधान कहानियों मे मानव की आन्तरिक वृत्तियों का सुन्दर विश्लेषण देखने को मिलता है। वातावरण प्रधान कहानियो मे लेखक यह दिखलाने का प्रयत्न करता है कि वातावरण मनुष्य के विचारो और भावो मे किस प्रकार परिवर्तन उपस्थित कर देता है। प्रेमचन्दजी की 'नशा' शीर्षक कहानी इस दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

कहानी के शिल्प-तन्त्र के सम्बन्ध मे ऊपर जो कुछ कहा गया है, उससे यह न समझना चाहिए कि कलाकार नियमो का ध्यान रखते हुए आख्यायिकाओ की रचना करते है। वास्तव मे कलाकारो की श्रेष्ठ कृतियों के आधार पर ही शिल्प-तन्त्र की रचना होती है। कहानी-लेखक किसी घटना को, सत्य को या भाव को अपनी अनुभूति का विषय बनाकर उसे सुन्दर अभिव्यक्ति का रूप दे देता है। कलाकार की अनुभूति मे

×'हिन्दी साहित्य विवेचन' (श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' तथा योगेन्द्रकुमार मल्लिक)

यदि आन्तरिकता अथवा सचाई है तो वह सही रास्ते पर आता वह जिस पथ का निर्माण कर जाता है, दूसरो के लिए भी वह भ बन जाता है।

कहानी और उपन्यास

१ कहानी मे जीवन के विविध अगो पर प्रकाश नही डाला सकता और न विविध प्रकार के जीवन का चित्रण ही किया है। 'उपन्यास' जहाँ एक विस्तृत वनस्थली है वहाँ कहानी को गुलदस्ता समझिये।'

२ कहानी में हम कुछ एक पात्रो को थोडी देर के लिए विशेष परिस्थितियों और सम्बन्धो मे देखते है उपन्यास की भांति कई परिस्थितियों और कई सम्बन्धो म नही।

३ कहानी और उपन्यास में केवल आकार का ही अन्तर नही, प्रकार का भी अन्तर है। साहित्य के इन दोनो प्रकारो मे मौलिक भेद एकतथ्यता का है। "यह नही कि कहानी में एक से अधिक तथ्यो की चर्चा नही होती, परन्तु अन्य सब तथ्य मूलतथ्य के लिए सेवा-भाव से प्रयुक्त होते है। एक ही तथ्य की एक उत्कृष्ट सवेदना पैदा करना कहानी की जान है। उपन्यास मे सवेदना नही बल्कि सवेदनाएँ रहती है। इस का यह अर्थ नही कि उपन्यास केन्द्र म प्रधान तथ्य की प्रधान सवेदना नही होती परन्तु उस प्रधान तथ्य की सवेदना तक पहुँचने मे लेखक को अनेक सवेदनाएँ हो चुकी होती है और उपन्यासकार उन सबकी व्याख्या करता है। इस प्रकार उपन्यास सवेदनाओ का एक प्रकार का इतिहास-सा हो जाता है। उपन्यास की तुलना यदि हम एक फव्वारे से करे जिसका जल बहुमुखी धाराओ मे होकर गिर रहा है तो कहानी की तुलना हम उस नल से कर सकते है, जिसका पानी एक स्थान पर केन्द्रित होकर गिरता है।"

आधुनिक हिन्दी कहानी का उद्भव और विकास

भारत के प्राचीन साहित्य मे जब वेद उपनिषद्, पुराण, जातक, हितोपदेश, पञ्चतन्त्र, बृहत्कथा आदि पर हमारी दृष्टि जाती है तो सहज ही

र इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हमारे देश का कथा-साहित्य अत्यन्त मृद्ध रहा है, किन्तु यह हम अवश्य स्वीकार करना होगा कि आधुनिक ल में जिस प्रकार की आख्यायिकाएँ लिखी जा रही हैं, वे पाश्चात्य-साहित्य से प्रभावित हैं। वैसे इंशाअल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' में भी इसका मूल देखा जा सकता है। राजा शिवप्रसाद का 'राजा भोज का सपना' भी हिन्दी कहानी का ही रूप है। परन्तु नये ढङ्ग की आख्यायिकाएँ लिखने का शौक बंगाली लेखकों की कृतियों से पैदा हुआ। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में बंगाली कहानी लेखकों की देखा देखी हिन्दी में पहले पहल बंग महिला के नाम से दुलाई वाली कहानी सन् १९०१ की सरस्वती पत्रिका में पहले पहल छपी और फिर किशारीलाल गोस्वामी की कहानी इन्दुमती १९०३ की सरस्वती में। अत हिन्दी कहानी का प्रारम्भ 'सरस्वती' और 'इन्दु' पत्रिकाओं के साथ ही होता है। किशारीलाल गोस्वामी, गिरिजाकुमार घोष (पार्वतीनन्दन) तथा छबीलेलाल गोस्वामी आदि इस युग के प्रमुख कहानी लेखक थे। इस युग की कहानियाँ एक प्रकार से तत्कालीन उपन्यासों का संक्षिप्त रूप हुआ करती थी। प्रारम्भिक युग के इन लेखकों में बाबू गिरिजाकुमार घोष की कहानियाँ कला की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ समझी जाती हैं।

सन् १९११ में श्री जयशंकरप्रसादजी की 'ग्राम' शीर्षक प्रथम मौलिक कहानी 'इन्दु' में प्रकाशित हुई। आगे चलकर हिन्दी में भावमूलक कहानियाँ लिखने में प्रसादजी ने बड़ी ख्याति प्राप्त की। उन्होंने कुल मिला कर ६९ कहानियाँ लिखी, जिनमें अन्तिम कहानी 'सालवती' है। प्रसादजी की अनेक कहानियों में मानसिक द्वन्द्व का बड़ा सुन्दर चित्रण हुआ है। मनोवृत्तियों का सूक्ष्म निरीक्षण तथा विश्लेषण उनकी कहानियों की प्रमुख विशेषता है। प्राचीन भारतीय आदर्शों के प्रति प्रसादजी की बड़ी श्रद्धा थी, जिसकी अभिव्यक्ति उनकी अनेक कहानियों में हुई है। उनके कथोपकथन भी कवित्वमय और बड़े मर्मस्पर्शी होते हैं। उनकी कहानियों का ग्रन्त प्रेमचन्दजी के शब्दों में "अपने ढङ्ग का निराला, बड़ा ह

भावपूर्ण, ध्वन्यात्मक और साहस हुआ करता है, जिससे पाठक का मन झकझोर उठता है और वह एक नई समस्या को सुलझाने लगता है।"

हिन्दी के आख्यायिका साहित्य में प्रसादजी की कहानियों का महत्वपूर्ण स्थान है।

सन् १६१२ मे 'इन्दु मे विश्वम्भरनाथ 'जज्जा' की परदेसी कहानी प्रकाशित हुई। इन्होने आगे अपनी सरल, भावपूर्ण कहानियो द्वारा हिन्दी कहानी-साहित्य का संवर्द्धन किया।

सन् १६१३ मे पण्डित विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' की पहली कहानी प्रकाशित हुई। उनकी कहानियाँ वार्तालाप प्रधान और सोद्देश्य हुआ करती थी। सन् १६१४ में आचार्य चतुरसेन शास्त्री की पहली कहानी 'गृहलक्ष्मी' मे प्रकाशित हुई। उसके बाद शास्त्रीजी अनेक कहानियाँ हिन्दी मे लिख चुके हैं।

सन् १६१५ को 'सरस्वती' म श्रीचन्द्रधर शर्मा गुलेरी की अमर कहानी 'उसने कहा था, का प्रकाशन हुआ। गुलेरीजी ने कुल मिला कर यद्यपि तीन ही कहानियाँ लिखी तथापि उक्त एक कहानी के बल पर ही उन्होने बडी ख्याति प्राप्त कर ली। यद्यपि इस कहानी को प्रकाशित हुए आज ४० वर्ष बीत गये, तो भी अपने कलात्मक गुणों के कारण यह कहानी हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानियो में गिनी जाती है। गुलेरीजी के आसमयिक स्वर्ग-वास मे हिन्दी साहित्य को निःसन्देह बडी क्षति पहुँची।

सन् १६१६ का वर्ष हिन्दी के कथा साहित्य के लिए बडा सौभाग्यशाली सिद्ध हुआ क्योंकि इसी वर्ष मुन्शी धनपतराय ने प्रेमचन्द के नाम से हिन्दी साहित्य में प्रवेश किया। ये पहले उर्दू में कहानी लिखते थे। उन्होने हिन्दी के कहानी-साहित्य मे एक नवीन शैली को जन्म दिया। कहानी को जीवन की वास्तविक भूमि पर लाने का श्रेय उन्हीं को है। उनकी कहानियों में ग्रामीण जनों के प्रति गहरी सहानुभूति के दर्शन

होते हैं। वे वास्तव में मूक जनता के लेखक हैं। उनकी अनेक कहानियों में राष्ट्रीय भावना तथा अत्याचारों के विरुद्ध ऊँची आवाज सुनाई पड़ती है। उनकी कहानियों के कथोपकथन नाटकीय तथा शैली यथार्थ-वादिता लिए हुए है। चरित्र-चित्रण में प्रेमचन्दजी आदर्शोन्मुख यथार्थ-वाद को लेकर चले हैं। कभी-कभी अपनी कहानियों में जब वे प्रचारक का रूप धारण कर लेते हैं, तो कला की दृष्टि से उनकी कहानियों को क्षति पहुँचती है।

प्रेमचन्दजी ने ४०० से भी ऊपर कहानियाँ लिखी हैं, जिनमें बीसियों कहानियाँ साहित्य की अमर सम्पत्ति हैं। कहानी-लेखक की दृष्टि से उन्होंने बड़ी लोकप्रियता प्राप्त की।

सन् १९१७ में रायकृष्णदास ने कहानियाँ लिखना प्रारम्भ किया, सन् १९१९ में श्रीचंडीप्रसाद "हृदयेश" और गोविन्दवल्लभ पंत ने इस क्षेत्र में प्रवेश किया।

सन् १९२० में श्री सुदर्शन ने, जो पहले उर्दू में लिखा करते थे, हिन्दी के क्षेत्र में प्रवेश किया। लोकप्रियता की दृष्टि से कहानी-लेखकों में प्रेमचन्दजी के बाद सुदर्शन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रेमचन्दजी की तरह उनकी भाषा भी चलती हुई, मुहावरेदार तथा माधुर्यपूर्ण है।

•श्री जैनेन्द्रकुमार हिन्दी के वर्तमान कहानी-लेखकों में प्रमुख हैं। वे अपने ढंग के अकेले कहानी-लेखक हैं। उनकी भाषा, शैली तथा रचना-तंत्र, सब अपनी विशिष्टता लिये हुए है। कहानी का पात्र कैसा भी हो, श्री जैनेन्द्र ने उसे अपने हृदय की सहानुभूति दी है। उन्हीं के शब्दों में "सभी पात्रों को मैंने अपने हृदय की सहानुभूति दी है। जहाँ यह नहीं कर पाया हूँ, उसी स्थल पर समझता हूँ, मैं चूका हूँ। दुनिया में कौन है जो बुरा होना चाहता है और कौन है जो बुरा नहीं है अच्छा ही अच्छा है? न कोई देवता है, न पशु। सब आदमी ही हैं, देवता से कम ही हैं और पशु से ऊपर ही। इस तरह किसे अपनी सहानुभूति से इन्कार कर दिया जाय?"

जैनेन्द्रजी की सबसे पहली कहानी संभवत सन् १९२७ में प्रकाशित हुई थी। अब तो उनकी कहानियो के अनेक सग्रह निकल चुके है। पात्रों के चरित्र चित्रण मे उन्हें विशेष सफलता मिली है। सूक्ष्म मनोविश्लेषण इनकी कहानियो की विशेषता है, उनकी कुछ कहानियाँ ऐसी भी हैं जिसमें दार्शनिक तत्त्व की प्रमुखता के कारण कथा-तत्त्व में कमी आ गई है।

नवीनतम पाश्चात्य शैली में कहानी लिखने वाले कलाकारो में अज्ञेयजी ने बडी ख्याति प्राप्त की। मानव मनोवृत्तियो का सूक्ष्म और मार्मिक चित्रण उनकी कहानियो की विशेषता है। अज्ञेयजी वर्षों तक जेल के सींखचों में बन्द रहे। इससे उन्हें अध्ययन और मनन का अच्छा अवसर मिला और इस अवसर से उन्होने लाभ भी उठाया है। उनकी कहानियों में सभी प्रकार की रूढियों के प्रति विद्रोह की भावना भी मिलती है।

श्री भगवतीचरण वर्मा ने दैनिक जीवन की घटनाओ को लेकर बहुत सी कहानियाँ लिखी हैं, जिनमें हास्य और व्यग की प्रतिष्ठा के कारण मनोरजकता और प्रभावोत्पादकता आ गई है।

यशपाल की कहानियो में समाज का जीता-जागता चित्र देखने को मिलता है। सामाजिक रूढियो, अन्ध विश्वासो तथा विकृतियो को खोल कर रख देने में इन्हें विशेष सफलता प्राप्त हुई है। प्रगतिवादी कहानी-लेखकों में यशपाल बडे लोकप्रिय और प्रभावशाली हैं। प्रसाद आधुनिक युग के सोद्देश्य कहानी-लेखकों मे से हैं और विशिष्ट सामाजिक जीवन में विश्वास करने वाले हैं। इनकी शैली अत्यन्त स्वाभाविक एव प्रभावपूर्ण है। कवि-कहानी-लेखकों में श्री सुमित्रानन्दन पत की कहानियो में अनुभूति की अपेक्षा भावमय कल्पना की प्रधानता रहती है। श्री निराला जी की कहानियों के कथानक प्राय मनोरजक होते हैं और उनके वर्णन और कथोपकथन बडे व्यग्यपूर्ण होते हैं। श्री सियारामशरण गुप्त की कहानियों म गहरी अनुभूति, मानवता तथा मर्यादा-पालन के भाव दृष्टि-गोचर होते हैं।

हास्य-रस के कहानी-लेखकों में श्री हरिशङ्कर शर्मा अन्नपूर्णानन्द वर्मा, जी० पी० श्रीवास्तव तथा कृष्णदेव प्रसाद गौड ने अच्छी कहानियाँ लिखी हैं। ऐतिहासिक कहानी-लेखकों में श्री राहुल साकृत्यायन ने विशेष ख्याति प्राप्त की।

हिन्दी की स्त्री-कहानी-लेखिकाओं में श्रीमती कमलादेवी चौधरी, सुभद्राकुमारी चौहान, होमवती देवी, सत्यवती मल्लिक, चन्द्रकिरण सौन- रेक्सा, उषा देवी मित्रा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

नये कहानी-लेखकों में विष्णु प्रभाकर, रागेय राघव, धर्मवीर भारती, गंगाप्रसाद मिश्र, अमृतलाल नागर आदि ने भी अच्छी कहानियाँ लिखी हैं।

साहित्य के अन्य अङ्गों की अपेक्षा हिन्दी का कहानी-साहित्य अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध है और आशा की जाती है कि भविष्य में भी यह उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होगा।

वर्तमान कहानी-संग्रह में जिन कहानियों का समावेश किया गया है, उनके लेखकों तथा प्रकाशकों का मैं अत्यन्त आभारी हूँ।

'उसने कहा था'

कहानी की समालोचना

'उसने कहा था,' कहानी स्वर्गीय चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' द्वारा लिखित हिन्दी की एक सर्वश्रेष्ठ कहानी है। गुलेरीजी ने केवल तीन कहानियाँ ही लिखी हैं, फिर भी वे हिन्दी के श्रेष्ठ कहानीकार के रूप में प्रख्यात हैं। उनकी यह ख्याति, उपर्युक्त कहानी पर ही आधारित है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में यह एक महाकाव्य के समान विख्यात है। इसकी जैसी विविधता और व्यापक पृष्ठभूमि कहानी में बहुत कम देखी जाती है। इतना होते हुए भी प्रभाव तथा संवेदना की एकता में यह एक सफल कहानी है। इसकी विशेषताओं का विश्लेषण कहानी के शिल्प-तन्त्र के आधार पर, आगे किया जाता है।

१ कथानक—'उसने कहा था', कहानी के कथानक को हम तीन भागों में देख सकते हैं। प्रथम इसके नायक लहनासिंह के बचपन का भाग है जो अमृतसर में व्यतीत होता है, दूसरा वह भाग है जिसमें वह ७७ नं० रायफल का जमादार है और छुट्टी से लाम पर जाते हुए सूबेदार हजारासिंह के घर सूबेदारनी से भेंट करता है और उसकी सूबेदार और पुत्र बोधासिंह को सुरक्षित रखने की भिक्षा याचना सुनकर मन-ही-मन संकल्प करता है। तीसरा वह भाग है, जिसमें लड़ाई के मैदान में भेष बदल कर आये हुए जर्मन अफसर के षड्यन्त्र से सूबेदार और उसके पुत्र बोधासिंह की रक्षा करता है और अपनी विलक्षण तुरतबुद्धि का परिचय देता है। वह स्वयं छाती में गहरा घाव होते हुए भी, घायलों को अस्पताल ले जाने वाली गाड़ियों में सूबेदार और बोधासिंह को भेज देता है और युद्ध

रह जाता है और ऐसी कल्पनामयी अचेतन अवस्था मे प्राण त्याग करता है कि जैसे वह अपने घर मे अपने भाई की गोद मे सिर रखे हुए है।

क्रम के विचार मे तीसरा भाग पहले भाग के बाद आया है और दूसरा भाग उसके अन्तर्गत नायक लहनासिंह की अचेत घायल स्थिति में स्मृति के रूप मे व्यक्त हुआ है। इस क्रम मे होने के कारण कथानक मे एक विशेष कलात्मकता और प्रभाव आ गया है, इससे कौतूहल की मात्रा बढ़ जाती है और अन्तिम भाग म दूसरा अंश आने से कौतूहल का पूर्ण विकास हो जाता है। दूसरे भाग मे 'उसने कहा था' का रहस्य खुलता है, अत यह रहस्योद्घाटन यदि बीच म हो जाता तो वही उसकी चरम सीमा आ जाती, जिसके बाद कहानी का और बढाना कलात्मक न होता।

कथानक के इस प्रकार के सगठन मे शीर्षक 'उसने कहा था' अत्यन्त सकेत पूर्ण है। इसे पढकर अपने आप ही प्रश्न होता है कि किसने कहा था? क्या कहा था? इन दोनों के उत्तर हमें दूसरे भाग मे मिलते हैं जो कालक्रम मे तो मध्य मे आता है, पर कलापूर्ण सङ्गठन की दृष्टि से अन्त मे ही आवश्यक है।

कथानक का प्रारम्भ, कथा की पृष्ठभूमि बनाता है और नाटकीय ढङ्ग से अमृतसर के उस दृश्य का चित्रण करता है जिसके साथ कहानी का प्रादुर्भाव होता है, साथ ही नायक और नायिका दोनों ही का मधुर रूप प्रगट होता है। कहानी का अत अत्यन्त मनोवैज्ञानिक तथा मार्मिक प्रभाव की छाप छोड़ने वाला है। हमारी करुण सवेदना कर्तव्य और प्रेम पर सर्वस्व त्याग करने वाले चरित्र के प्रति उमड पड़ती है और मन और कल्पना दोनों ही मग्न हो जाते हैं।

कथानक की विविधता भी महत्वपूर्ण है। जहाँ एक ओर कोमल मधुर प्रेमभाव से समन्वित घटनाओं का चित्रण है, वही दूसरी ओर कर्तव्य के कठिन कठोर क्षेत्र की सबसे भयावह घटनाओं—युद्ध और ... का भी वर्णन है। जहाँ एक ओर अमृतसर की मधुर स्नेहपूर्ण गली ...

वही दूसरी ओर फ्रांस और बेल्जियम की भयङ्कर साहसापेक्षी रणस्थली का भी एक दृश्य। फिर भी कथानक को पुष्ट करने वाली ये घटनायें और जीवन के यथार्थ दृश्य है, काल्पनिकता की गन्ध भी इनमे नहीं। हमे ऐसा लगता है कि जैसे यह समस्त कथानक सच्चा हो।

२ चरित्र चित्रण—कहानी मे जितने भी चरित्र है, उनमे केवल वास्तविकता और सभाव्यता ही नही, वरन् ऐसी सजीवता है कि हमारे मन पर उनके व्यक्तित्व की छाप स्पष्टतया पड जाती है। कहानी के पात्र हैं—लहनासिंह, सूबेदार हजारासिंह, बोधासिंह, वजीरासिंह जो सभी सिक्ख पलटन के सिपाही और अफसर हैं, लपटन के वेश मे जर्मन अफसर तथा सूबेदारनी। लपटन की तो झांकी मात्र है, पर उससे उसका सतर्क और साहसी व्यक्तित्व स्पष्ट हो जाता है। बोधासिंह का चरित्र-विकास नही हो पाया। सूबेदार हजारासिंह, एक साहसी, ओजस्वी, उदार, वीर और स्नेहपूर्ण व्यक्ति के रूप मे प्रभाव डालते हैं। वजीरासिंह विनोदी व्यक्ति है। उसका मसखरापन और टालू स्वभाव दोनों ही वास्तविक जान पडते हैं। साथ ही वह बडा बुद्धिमान् भी है और मन की स्थिति समझता है, तभी वह अन्तिम दृश्य में लहना के प्रश्न 'कौन भाई कीरतसिंह?' का उत्तर 'हाँ' कहकर देता है जिससे उसकी कल्पना को ठेस न लगे। इसी कारण अपने सकल्प के हिसाब से, घर के आंगन मे आम के पेड के नीचे भाई कीरतसिंह की गोद में सिर रखने की कल्पना करके वह अपने प्राण, शांति पूर्वक छोड सका।

'दो प्रमुख चरित्र,—जिनमे कहानी का प्रारम्भ होता है और जो नायक और नायिका हैं—लहनासिंह और सूबेदार हजारासिंह की सूबेदारनी हैं। सूबेदारनी का बचपन का रूप वह है जब वह अपने मामा के यहाँ अमृतसर आयी हुई है और बालक लहनासिंह से दही वाले के यहाँ भेंट होती है। यह उसका किशोरावस्था का नटखट चचल और लज्जाशील रूप है। दूसरे वह सूबेदारनी के रूप में आती है और लहनासिंह से अपने पति तथा पुत्र की रक्षा की भीख मांगती है। यह

उसका कर्तव्यशीला पत्नी, वात्सल्यमयी माता का करुणा रूप है। दोनो ही—पति और पुत्र के फौज मे होने से उसकी उद्विग्नता सहज ही है। उन दोनो के प्रति प्रेम और कर्तव्य का निर्वाह करती हुई भी वह लहनासिंह के नि स्वार्थ प्रेम को समझती और कद्र करती है। उसके चरित्र की उज्जवलता और दृढता का प्रभाव उसके मन पर अवश्य है और बचपन की वे सभी घटनाये भी उसे याद है जो लहना के नि स्वार्थ प्रेम को प्रमाण थी। इस प्रकार प्रेम और कर्तव्य दोनो ही का निर्वाह करने वाला उसका चरित्र है।

लहनासिंह—उसका चरित्र सबमें अधिक पुष्ट और प्रभावशाली है। उसके दो रूप स्पष्ट है, एक प्रेमी का और दूसरा कर्तव्यरत साहसी वीर व्यक्ति का। बचपन के किशोरावस्था के रूप मे उसके प्रेमभाव की ही तीव्रता है। प्रेम के क्षेत्र मे भी वह साहसी है और कर्तव्य-निर्वाह के क्षेत्र में भी वह सिपाही है। आज्ञापालन करना भी जानता है और 'कमांड' करना भी। परिवार के प्रति भी उसका स्नेहभाव स्पष्ट है, इसी से प्रेरित होकर वह अपने भाई कीरतसिंह की गोद मे अपने घर मे मरना चाहता है। वह कितना चतुर और प्रत्युत्पन्नमति का व्यक्ति है, यह जर्मन अफसर के षट्यन्त्र को पहिचानने और उसे व्यर्थ करने की युक्ति सोचने में प्रमाणित हो जाता है। वह बुद्धिमान् भी है और कार्यकुशल भी। उसकी त्यागपूर्ण चरित्र अत्यन्त प्रभावकारी है। वह अपनी जरसी, कंबल सब बोधासिंह को दे देता है और खुद ठंडक झेलता है। गहरे घाव के रहते हुए भी स्वयं अस्पताल न जाकर दोनो पिता-पुत्र को भेज देता है। यह सब साहस और उत्सर्ग की भावना, उसके स्वच्छ नि स्वार्थ प्रेम से प्रेरित हैं, जिसका वह एक ज्वलंत प्रतीक है। इस प्रकार लहनासिंह के रूप में एक वास्तविक किन्तु आदर्श साहसी, प्रेमी और कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति का चित्रण हुआ है।

चरित्र-चित्रण की मार्मिक विशेषताये कहानीकार के अनुभव, दक्षता और निरीक्षण को प्रकट करने वाली हैं।

कथोपकथन—कथोपकथन का इस कहानी में अपना विशिष्ट महत्व है। वह रोचक, स्वाभाविक एवं संकेतपूर्ण तो है ही, चरित्रों के और कथानक के मर्म को उद्घाटन करने का वह महत्वपूर्ण साधन बन कर आया है। लहनासिंह और लड़की का संक्षिप्त वार्तालाप सारे दृश्य को तो अंकित करता ही है, दोनों के चरित्र, अवस्था और मन स्थिति पर भी यथेष्ट प्रकाश डालता है। कथोपकथन द्वारा ही लेखक ने युद्धक्षेत्र के दृश्यों को सजीव रूप में प्रस्तुत किया है, जिनका वर्णन निश्चय ही नीरस हो जाता है। इस अवसर के कथोपकथनों से भारतीय वीरता, सिक्ख पलटन का साहस और त्याग तथा युद्ध को हंसी विनोद के रूप में ग्रहण करने की विशेषता तो प्रकट होती ही है इसके साथ ही साथ जर्मन सेना के षड्यंत्र, चतुराई तथा फ्रांस के लोगों की घबड़ाहट, उद्वेग तथा कृतज्ञता के भाव भी संकेतित हो जाते हैं।

कहानी के कथोपकथनों में प्रायें कुछ पंजाबी प्रादेशिक शब्दों, जैसे कुड़माई, धुमा, होरां, खोता, सोहरा, तथा अंग्रेजी और जर्मन शब्दावली का प्रयोग वास्तविकता और विश्वनीयता की विशेषताओं का समावेश करता है। इसके साथ ही कथोपकथन में रोचकता बढ़ जाती है और चरित्र का वास्तविक रूप सामने आ जाता है। अन्त कहा जा सकता है कि कहानी का कथोपकथन स्वाभाविक रोचक और जोरदार है।

वर्णन शैली—गुलेरीजी की वर्णन शैली रोचक और प्रौढ़ है। वे चरित्र और घटना की पृष्ठभूमि का सुन्दर और विश्वसनीय वर्णन करते हैं। उनकी शैली अवसर के अनुकूल, साहित्यिक एवं भावात्मक विशेषताओं को धारण करती है। 'उसने कहा था'—कहानी में उनकी शैली अपने पूर्ण उत्कर्ष को प्राप्त है। प्रारम्भ में अमृतसर के इक्के-तांगे वालों के वर्णन की सजीवता सराहनीय है। और बीच के युद्ध और अन्त के मनोविश्लेषण में प्रयुक्त इनकी शैली मार्मिक प्रभाव डालने वाली है। प्रभावपूर्ण शैली में बीच २ में व्यंग्यात्मक छोटें भी हमें चमत्कृत कर देते हैं। उदाहरण के लिए देखिये—"बड़े बड़े शहरों के इक्के-गाड़ी

वालो की जबान के कोड़ो से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गए हैं वे अमृतसर के बम्बू कार्ट वालो की बोली का मरहम लगावे।"

"ऐसा चाँद जिसके प्रकाश में संस्कृत-कवियो का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है और हवा ऐसी चल रही थी जैसी कि बाणभट्ट की भाषा मे दन्तवीणोपदेशाचार्य कहलाती।"

कथा मे आये वर्णनो में भी स्थान और पात्र के अनुसार शब्दावली का प्रयोग है।

देश काल—इस कहानी मे आया देश और काल का चित्रण भी सजीव और मर्मस्पर्शी है। उसमें केवल औचित्य का निर्वाह ही नही, वरन् ऐसा जान पडता है कि हम उसी स्थान पर खडे उसी वातावरण में घटनाओ का अवलोकन वास्तविक व्यक्तियो के बीच कर रहे हैं। अमृतसर के बम्बू कार्ट वालो की विशेषता और बोली, युद्धक्षेत्र की परिस्थिति, वहाँ की सर्दी, लडाई के खाई-खदक आदि विवरण देश-काल का वास्तविक रूप स्पष्ट करते हैं। अतएव हम उनके बीच की घटनाओ और चरित्रो को उनकी यथार्थता पर पूर्ण विश्वास के साथ, ग्रहण करते हैं।

उद्देश्य—कहानी का उद्देश्य चरित्र विश्लेषण है, इसमे सन्देह नही। उसी उद्देश्य को लेकर लहनासिंह की मन स्थिति का विभिन्न परिस्थितियो मे सांकेतिक चित्रण हुआ है। उसकी अन्तिम स्थिति का चित्रण तो इतना मर्मस्पर्शी है कि वह व्यापक रीति से मानव-सवेदनाओ को जगाने की सामर्थ्य रखता है। मन स्थिति का विश्लेषण मनोविज्ञान की दृष्टि से यथार्थ है, पर उसका ऐसा सवेदना ग्राह्यरूप प्रस्तुत किया गया है जो न केवल लेखक के व्यापक तथा सूक्ष्म अनुभव का द्योतक है, वरन् उसकी समर्थ अभिव्यजनाशक्ति का भी प्रमाण है। प्रत्यक्ष रूप से चरित्र-चित्रण या उद्देश्य होते हुए भी इसका प्रच्छन्न या व्यग्य उद्देश्य भी है और वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस कहानी मे जीवन के अन्तर्गत प्रेम और कर्तव्य की स्थिति का सुन्दर विश्लेषण हुआ है। जिस चरित्र के

भीतर, कर्तव्य की कठोरता के बीच प्रेम विकसित होता है, वही चरित्र प्रभावशाली हो सकता है। यह एक आदर्श प्रेमी और कर्तव्यनिष्ठ वीर व्यक्ति की कहानी है, जिसने प्रेम पर सब कुछ निछावर करते हुए भी विलक्षण रीति से कर्तव्य का निर्वाह किया। अत इसका वास्तविक उद्देश्य जीवन मे प्रेम और कर्तव्य के समन्वित रूप को चित्रण करना है।

कहानी हमारी सवेदनाओ को जागृत कर हमारी भावनाओं का परिष्कार करती है और एक ऐसा आदर्श भी प्रस्तुत करती है जो आदर्श होते हुए भी जीवन की यथार्थ और ठोस भूमि पर खडा है। अतएव अपनी यथार्थता के कारण, यह कहानी युग युग तक अपना प्रभाव डालती रहेगी।

श्री जयशंकर प्रसाद

१. मधुआ

आज सात दिन हो गए, पीने की कौन कहे, छुआ तक नहीं। आज सातवाँ दिन है सरकार।

तुम झूठे हो। अभी तो तुम्हारे कपड़े से महक आ रही है।

वह वह तो कई दिन हुए। सात दिन से ऊपर—कई दिन हुए—अँधेरे मे बोतल उड़ेलने लगा था। कपड़े पर गिर जाने से नशा भी न आया। और आपको कहने का क्या कहूँ ""सच मानिये। सात दिन—ठीक सात दिन से एक बूँद भी नहीं।

ठाकुर सरदारसिंह हँसने लगे। लखनऊ मे लड़का पढ़ता था। ठाकुर साहब भी कभी कभी वहीं आ जाते। उनको कहानी सुनने का चसका था। खोजने पर यही शराबी मिला। वह रात को, दोपहर मे, कभी-कभी सवेरे भी आ जाता। अपनी लच्छेदार कहानी सुनाकर ठाकुर का मनो विनोद करता।

ठाकुर ने हँसते हुए कहा—तो आज पिओगे न।

झूठ कैसे कहूँ। आज तो जितना मिलेगा, सब पिऊँगा। सात दिन चने चबेने पर बिताये हैं, किसलिए।

अद्भुत! सात दिन पेट काटकर आज अच्छा भोजन न करके तुम्हें पीने की सूझी है! यह भी

सरकार! मौज-बहार की एक घड़ी, एक लम्बे दुःखपूर्ण जीवन से अच्छी है। उसकी खुमारी मे रूखे दिन काट लिये जा सकते हैं।

अच्छा आज दिन भर तुमने क्या किया है ?

मैंने?–अच्छा सुनिये—सबेरे कुहरा पड़ता था, मेरे धुआँ से कम्बल सा वह भी सूर्य के चारो ओर लिपटा था। हम दोनों मुँह छिपाये पड़े थे।

ठाकुर साहब ने हँसकर कहा—अच्छा तो इस मुँह छिपाने का कोई कारण ?

सात दिन से एक बूँद भी गले न उतरी थी। भला मैं कैसे मुँह दिखा सकता था। और जब बारह बजे धूप निकली, तो फिर लाचारी थी। उठा, हाथ मुँह धोने मे जो दुख हुआ, सरकार वह क्या कहने की बात है। पास में पैसे बचे थे। चना चबाने से दाँत भाग रहे थे। कटी पटी लग रही थी। पराठेवाले के यहाँ पहुँचा, धीरे धीरे खाता रहा और अपने को सेंकता भी रहा। फिर गोमती किनारे चला गया। घूमते घूमते अँधेरा होगया, बूँदें पड़ने लगीं। तब कहीं भगा और आपके पास आगया।

अच्छा जो उस दिन तुमने गडरिये वाली कहानी सुनाई थी, जिसमे आसफुद्दौला ने उसकी लड़की का आँचल भुने हुए भुट्टे के दानो के बदले मोतियो से भर दिया था। वह क्या सच है ?

सच। अरे वह गरीब लड़की भूख से उसे चबाकर थू थू करने लगी। रोने लगी। ऐसी निर्दय दिल्लगी बड़े लोग कर ही बैठते हैं। सुना है श्री रामचन्द्रजी ने भी हनुमानजी से ऐसी ही

ठाकुर साहब ठठाकर हँसने लगे। पेट पकड़कर हँसते हँसते लोट गए। साँस बटोरते हुए सम्हल कर बोले—और बड़प्पन कहते किसे हैं? कंगाल तो कंगाल ! गधी लड़की ! भला उसने कभी मोती देखे थे, चबाने लगी होगी। मैं सच कहता हूँ, आज तक तुमने जितनी कहानियाँ सुनाईं, सब में बड़ी टीस थी। शाहजादों के दुखड़े, रंग महल की अभागिनी बेगमों के निष्फल प्रेम, करुण कथा और पीड़ा से भरी हुई कहानियाँ तुम्हें आती हैं, पर ऐसी हँसाने वाली कहानी और सुनाओ, तो मैं तुम्हें अपने सामने ही बढ़िया शराब पिला सकता हूँ।

सरकार ! बूढ़ो से सुने हुए वे नवाबी के सोने से दिन, ग्रमीरों की रँग-रेलियाँ, दुखियो की दर्द भरी ग्राहे, रँग-महलो मे घुल घुल कर मरने वाली बेगमे, ग्रपने ग्राप सिर मे चक्कर काटती रहती हैं। मै उनकी पीडा से रोने लगता हूँ। ग्रमीर कगाल हो जाते हैं। बडो बडो के घमड चूर होकर धूल मे मिल जाते हैं। तब भी दुनियाँ बडी पागल है! मैं उसके पागलपन को भूलने के लिये शराब पीने लगता हूँ—सरकार! नही तो यह बुरी बला कौन ग्रपने गले लगाता ?

ठाकुर साहब ऊँघने लगे थे। ग्रँगीठी मे कोयला दहक रहा था। शराबी सरदीसे ठिठुरा जा रहा था। वह हाथ सेकने लगा। सहसा नीद से चौंक कर ठाकुर साहब ने कहा—ग्रच्छा जाग्रो मुझे नीद लग रही है। वह देखो, एक रुपया पड़ा है, उठा लो। लल्लू को भेजते जाग्रो।

शराबी रुपया उठा कर धीरे से खिसका। लल्लू था ठाकुर साहब का जमादार। उसे खोजते हुए जब वह फाटक पर की बगलवाली कोठरो के पास पहुँचा तो उसे सुकुमार कठ से सिसकने का शब्द सुनाई पडा। वह खडा होकर सुनने लगा।

तू शूग्रर रोना क्यो है? कुँग्रर साहब ने दो ही लाते न लगाई है! कुछ गोली तो नही मार दी?—कर्कश स्वर से लल्लू बोल रहा था, किन्तु उत्तर म सिसकियों के साथ एकाध हिचकी ही सुनाई पड जाती थी। ग्रब ग्रौर भी कठोरता से लल्लू ने कहा—मधुग्रा! जा सो रह! नखरा न कर, नही तो उठूँगा तो खाल उधेड दूँगा! समझा न?

शराबी चुपचाप सुन रहा था। बालक की सिसकी ग्रौर बढ़ने लगी। फिर उसे सुनाई पड़ा—ले ग्रब भागता है कि नहीं? क्यो मार खाने पर तुला है?

भयभीत बालक बाहर चला ग्रारहा था। शराबी ने उसके छोटे से सुन्दर गोरे मुँह को देखा। ग्राँसू की बूँदें ढुलक रही थो। बडे दुलार से उसका मुँह पोछते हुए उसे लेकर वह फाटक के बाहर से चला ग्राया।

दस बज रहे थे। कडाके की सरदी थी। दोनो चुपचाप चलने लगे। शराबी की मौन सहानुभूति को उस छोटे से सरल हृदय ने स्वीकार कर लिया। वह चुप हो गया। अभी वह एक तग गली पर रुका ही था कि बालक के फिर से सिसकने की उसे आहट लगी। वह झिडक कर बोल उठा—

अब क्या रोता है रे छोकरे ?

मैंने दिन भर से कुछ खाया नही।

कुछ खाया नही, इतने बडे अमीर के यहाँ रहता है और दिनभर तुझे खाने को नही मिला ?

यही कहने तो मै गया था जमादार के पास, मार तो रोज ही खाता हूँ। आज तो खाना ही नही मिला। कुँअर साहब का ओवरकोट लिए खेल मे दिन भर साथ रहा। सात बजे लौटा, तो और भी नौ बजे तक कुछ काम करना पडा। आटा रख नही सका था। रोटी बनती तो कैसे। जमादार से कहने गया था।—भूख की बात कहते कहते बालक के ऊपर उसकी दीनता और भूख ने एक साथ ही जैसे आक्रमण कर दिया, वह फिर हिचकियाँ लेने लगा।

शराबी उसका हाथ पकडकर घसीटता हुआ गली मे ले चला। एक गदी कोठरी का दरवाजा ढकेल कर बालक को लिए हुए वह भीतर पहुँचा। टटोलते हुए सलाई से मिट्टी की ढेबरी जलाकर वह फटे कबल के नीचे से कुछ खोजने लगा। एक पराठे का टुकडा मिला। शराबी उसे बालक के हाथ मे देकर बोला—तब तक तू इसे चबा मै तेरा गढा भरने के लिए कुछ और ले आऊँ—सुनता है रे छोकरे। रोना मत, रोयेगा तो खूब पीटूँगा। मुझे रोने से बडा बैर है। पाजी कहीं का, मुझे भी रुलाने का

शराबी गली के बाहर भागा। उसके हाथ मे एक रुपया था।—बारह आने का एक देसी अद्धा और दो आने की चाय दो आने की

पकौडी नहीं नहीं आलू, मटर अच्छा, न सही। चारो आने का मांस ही ले लूँगा, पर यह छोकरा। इसका गढा जो भरना होगा यह कितना खायगा और क्या खायगा। ओह! आज तक तो कभी मैने दूसरो के खाने का सोच विचार किया ही नही। तो क्या ले चलूँ? पहले एक अद्धा ही ले लूँ। इतना सोचते सोचते उसकी आँखो पर बिजली के प्रकाश की झलक पडी। उसने अपने को मिठाई की दूकान पर खडा पाया। वह शराब का अद्धा लेना भूलकर मिठाई पूरी खरीदने लगा। नमकीन लेना भी न भूला। पूरा एक रुपये का सामान लकर वह दकान से हटा। जल्द पहुँचने के लिए एक तरह से दौडने लगा। अपनी कोठरी मे पहुँच कर उसने दोनो की पांत बालक के सामने सजा दी। उनकी सुगन्ध से बालक के गले म एक तरावट पहुँची। वह मुस्कराने लगा।

शराबी ने मिट्टी की गगरी से पानी उँडेलते हुए कहा—नटखट कही का हँसता है, सोधी बास नाक म पहुँची न! ले खूब ठूस कर खा ले, और फिर रोया कि पिटा!

दोनो ने, बहुत दिन पर मिलने वाले दो मित्रो की तरह साथ बैठकर भर पेट खाया। सीली जगह मे सोते हुए बालकने शराबी का पुराना बडा कोट ओढ लिया था। जब उसे नीद आ गई तो शराबी भी कम्बल तान कर बडबडाने लगा—सोचा था आज सात दिन पर भर पेट पीकर सोऊँगा लेकिन यह छोटा सा छोरा पाजी, न-जाने कहाँ से आ धमका।

× × × ×

एक चिन्तापूर्ण आलोक मे आज पहले पहल शराबी ने आँख खोल कर कोठरी मे बिखरी हुई दारिद्रय की विभूति को देखा और देखा उस घुटनो से ठुड्डी लगाये हुए निरीह बालक को। उसने तिलमिलाकर मन ही मन प्रश्न किया—किसने ऐसे सुकुमार फूलो को कष्ट देने के लिये निर्दयता की सृष्टि की? आह री नियति! तब इसको लेकर मुझे घरबारी बनना पडेगा क्या? दुर्भाग्य! जिसे मैंने कभी सोचा भी न था। मेरी

इतनी माया—ममता—जिस पर, आज तक केवल बोतल का ही पूरा अधिकार था—इसका पक्ष क्यो लेने लगी ? इस छोटे से पाजी ने मेरे जीवन के लिये कौन—सा इन्द्रजाल रचने का बीडा उठाया है। तब क्या करूँ ? कोई काम करूँ ? कैसे दोनो का पेट चलेगा। नही, भगा दूँगा इसे—आँख तो खोले।

बालक अँगडाई ले रहा था। वह उठ बैठा। शराबी ने कहा—ले उठ कुछ खा ले। अभी रात का बचा हुआ है, और अपनी राह देख। तेरा नाम क्या है रे ?

बालक ने सहज हँस हँस कर कहा—मधुआ ! भला हाथ मुँह भी न धाऊँ। खाने लगूँ। और जाऊँगा कहाँ ?

आह ! कहाँ बताऊँ इसे कि चला जाय। कह दूँ कि भाड मे जा, किन्तु वह आज तक दुख की भट्टी मे जलता ही तो रहा है। तो वह चुपचाप घर से झल्लाकर सोचता हुआ निकला—ले पाजी, अब यहाँ लौटूँगा ही नही। तू ही इस कोठरी मे रह।

शराबी घर से निकला। गोमती किनारे पहुँचने पर उसे स्मरण हुआ कि वह कितनी ही बाते सोचता आ रहा था, पर कुछ भी सोच न सका। हाथ मुँह धाने मे लगा। उजली धूप निकल आई थी। वह चुपचाप गोमती की धारा को देख रहा था। धूप की गरमी से सुखी हो कर वह चिन्ता भुलाने का प्रयत्न कर रहा था, कि किसी ने पुकारा—

भले आदमी रहे कहाँ ? सालो पर दिखाई पडे। तुमको खोजते-खोजते मै थक गया।

शराबी ने चौंक कर देखा। वह कोई जान-पहचान का तो मालूम होता था, पर कौन है, यह ठीक ठीक न जान सका।

उसने फिर कहा—तुम्ही से कह रहे है। सुनते हो, उठा ले जाओ अपनी सान धरने की कल, नही तो सडक पर फेंक दूँगा। एक ही तो कोठरी, जिसका मैं दो रुपये किराया देता हूँ, उसमे क्या मुझे अपना कुछ रखने के लिये नही है ?

ओहो ! रामजी तुम हो, भाई मै भूल गया था । तो चलो आज ही उसे उठा लाता हूँ ।—कहते हुए शराबी ने सोचा—अच्छी रही, उसी को बेचकर कुछ दिनों तक काम चलेगा ।

गोमती नहा कर, रामजी पास ही अपने घर पर पहुँचा । शराबी को कल देते हुए उसने कहा—ले जाओ, किसी तरह मेरा इससे पिण्ड छूटे ।

बहुत दिनो पर आज उसको कल ढोना पड़ा । किसी तरह अपनी कोठरी मे पहुँच कर उसने देखा कि बालक चुपचाप बैठा है । बड़बड़ाते हुए उसने पूछा—क्यो रे, तूने कुछ खा लिया कि नही ?

भर-पेट खा चुका हूँ, और वह देखो तुम्हारे लिये भी रख दिया है। —कह कर उसने अपनी स्वाभाविक मधुर हँसी से उस रूखी कोठरी को तर कर दिया । शराबी एक क्षण भर चुप रहा । फिर चुपचाप जलपान करने लगा । मन-ही-मन सोच रहा था—यह भाग्य का संकेत नही तो और क्या है ? चलूँ फिर सान देने का काम चलता करूँ । दोनो का पेट भरेगा । वही पुराना चरखा फिर सिर पड़ा । नही तो, दो बाते, किस्सा-कहानी इधर-उधर की कहकर अपना काम चला ही लेता था ! पर अब तो बिना कुछ किये घर नही चलने का । जल पीकर बोला—क्यो मधुआ, अब तू कहाँ जायगा ?

कही नही ।

यह लो, तो फिर यहाँ जमा गड़ी है । कि मैं खोद-खोद कर तुझे मिठाई खिलाता रहूँगा ।

तब कोई काम करना चाहिये ।

करेगा ?

जो कहो ?

अच्छा तो आज से मेरे साथ-साथ घूमना पडेगा । यह कल तेरे लिये लाया हूँ । चल आज से तुझे सान देना सिखाऊँगा । कहाँ रहूँगा, इसका कुछ ठीक नही । पेड़ के नीचे रात बिता सकेगा न !

कहीं भी रह सकूँगा, पर उस ठाकुर की नौकरी न कर सकूँगा।—शराबी ने एक बार स्थिर दृष्टि से उसे देखा। बालक की आँखें दृढ़ निश्चय की सौगन्ध खा रही थी।

शराबी ने मन-ही-मन कहा—बैठे बैठाये यह हत्या कहाँ से लगी। अब तो शराब न पीने की मुझे भी सौगन्ध लेनी पड़ी।

वह साथ ले जाने वाली वस्तुओं को बटोरने लगा। एक गट्ठर का दूसरा कल का, दो बोझ हुए।

शराबी ने पूछा—तू किसे उठाएगा ?

जिसे कहो।

अच्छा, तेरा बाप जो मुझको पकड़े तो ?

कोई नहीं पकड़ेगा, चलो भी। मेरे बाप कभी के मर गये।

शराबी आश्चर्य से उसका मुँह देखता हुआ कल उठा कर खड़ा हो गया। बालक ने गठरी लादी। दोनों कोठरी छोड़ कर चल पड़े।



श्रीचन्द्रधर शर्मा गुलेरी

२. उसने कहा था

बड़े बड़े शहरों के इक्के-गाड़ीवालों की जबान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गए हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बम्बूकार्ट वालों की बोली का मरहम लगावें। जब बड़े बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्के वाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट सम्बन्ध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखें न होने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरों की अँगुलियों के पोरों को चीथकर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं और संसार भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरी वाले तंग, चक्करदार गलियों में, हर एक लड्ढी वाले के लिए ठहरकर सबका समुद्र उमड़ाकर 'बचो खालसा जी', 'हटो भाई जी', ,ठहरना भाई', 'आने दो लालाजी, 'हटो बाछा', कहते हुए सफेद फेटों, खच्चरों और बत्तकों, गन्ने, खोमचे और भारेवालों के जंगल में से राह खेते हैं। क्या मजाल है कि जी और 'साहब' बिना सुने किसी को हटाना पड़े। बात यह नहीं कि उनकी जीभ चलती नहीं, चलती है, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती हुई। यदि कोई बुढ़िया बार बार चिनौती देने पर भी लीक से नहीं हटती तो उनकी वचनावली के ये नमूने हैं—हट जा, जीणे जोगिए, हट जा, करमा वालिए, हट जा, पुत्ता प्यारिए, बच जा, लम्बी वालिए। समष्टि में इ[illegible] । अर्थ कि तू जीने योग्य है तू भाग्यों वाली है तू पुत्र को प्यारी है, लम्बी उमर तेरे सामने है, तू क्या मेरे पहियों के नीचे आना चाहती है? बच जा।

ऐसे बम्बूकार्ट वालो के बीच मे होकर एक लड़का और एक लड़की चौक की एक दुकान पर आ मिले। उसके बालो और इसके ढीले सुथने से जान पडता था कि दोनो सिख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था और यह रसोई के लिए बडियाँ। दुकानदार एक परदेशी से गुथ रहा था, जो सेर भर गीले पापडो की गड्डी को गिने बिना न हटता था।

'तेरे घर कहाँ है ?'

'मगरे मे,—और तेरे ?'

'माझे मे,—यहाँ कहाँ रहती है ?'

'अतरसिंह की बैठक मे, वे मेरे मामा होते हैं।'

'मै भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर बाजार मे है।'

इतने मे दुकानदार निबटा और इनका सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनो साथ साथ चले। कुछ दूर जाकर लडके ने मुस्कराकर पूछा- 'तेरी कुडमाई हो गई ?' इस पर लडकी कुछ आँखे चढ़ाकर 'धत्' कहकर दौड गई और लडका मुँह देखते रह गया।

दूसरे-तीसरे दिन सब्जी वाले के यहाँ या दूध वाले के यहाँ अकस्मात् दोनो मिल जाते। महीना भर यही हाल रहा। दो तीन बार लडके ने फिर पूछा, 'तेरी कुडमाई हो गई ?' और उत्तर मे वही 'धत्' मिला। एक दिन जब फिर लडके ने वैसे ही हँसी मे चिढ़ाने के लिए पूछा तो लड़की, लडके की सम्भावना के विरुद्ध बोली हाँ हो गई।'

'कब ?'

'कल,—देखते नही यह रेशम से कढा हुआ सालू।' लडकी भाग गई। लडके ने घर की राह ली। रास्ते मे एक लडके को मोरी मे ढकेल दिया, एक छाबडी वाले की दिन भर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभी वाले के ठेले मे दूध उँडेल दिया। सामने नहाकर

आती हुई किसी वैष्णवी से टकराकर अन्धे की उपाधि पाई। तब कहीं घर पहुँचा।

[२]

'राम-राम, यह भी कोई लड़ाई है। दिन रात खंदकों में बैठे बैठे हड्डियाँ अकड़ गई। लुधियाना से दस गुना जाड़ा और मेंह और बरफ ऊपर से। पिंडलियों तक कीचड़ में धँसे हुए हैं। गनीम कहीं दीखता नहीं—घंटे दो घंटे में कान के परदे फाड़ने वाले धमाके के साथ सारी खंदक हिल जाती है और सौ-सौ गज धरती उछल पड़ती है। इस गैबी गोले से बचे तो कोई लड़े। नगरकोट का जलजला सुना था। यहाँ दिन में पचीस जलजले होते हैं। जो कहीं खंदक से बाहर साफा या कुहनी निकल गई, तो चटाक से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्टी में लेटे हुए हैं या घास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।

'लहनासिंह, और तीन दिन हैं। चार तो खंदक में बिता ही दिए। परसों 'रिलीफ' आ जायगी और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों झटका करेंगे और पेट भर खाकर सो रहेंगे। उसी फिरंगी मेम के बाग में मखमल की सी हरी घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती, कहती है तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आए हो।'

चार दिन तक पलक नहीं झँपी, बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ाकर मार्च का हुक्म मिल जाय। फिर सात जर्मनों को अकेला मारकर न लौटूं तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो। पाजी कहीं के, कलों के घोड़े—संगीन देखते ही मुँह फाड़ देते हैं और पैर पकड़ने लगते हैं? यों अँधेरे में तीस तीस मन का गोला फेंकते है। उस दिन धावा किया था-चार मील तक एक जर्मन भी नहीं छोड़ा था। पीछे जनरल साहब ने हट आने का कमान दिया, नहीं तो—

'नहीं तो सीधे बर्लिन पहुँच जाते, क्यों ?' सूबेदार हजारासिंह ने मुस्कराकर कहा—'लड़ाई के मामले में जमादार या नायक के चलाये नहीं चलते। बड़े अफसर दूर की सोचते हैं। तीन सौ मील का सामना है।एक तरफ बढ़ गये तो क्या होगा ?

'सूबेदार जी, सच है'—लहनासिंह बोला—'पर करें क्या ? हड्डियों-हड्डियों में तो जाड़ा धँस गया है। सूर्य निकलता नहीं और खाई में दोनों तरफ से चंबे की बावलियों के से सोते झर रहे हैं। एक धावा हो जाय तो गरमी आ जाय।' 'उदमी उठ, सिगड़ी में कोले डाल। वजीरा तुम चार जने बाल्टियाँ लेकर खाई का पानी बाहर फेंको। महासिंह शाम हो गई है, खाई के दरवाजे पर पहरा बदल दे।' यह कहते हुए सूबेदार सारी खंदक में चक्कर लगाने लगे।

वजीरासिंह पलटन का विदूषक था। बाल्टी में गँदला पानी भर कर खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला—'मैं पाधा बन गया हूँ। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण !' इस पर सब खिलखिला पड़े और उदासी के बादल फट गये।

लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भर कर उसके हाथ में देकर कहा—'अपनी बाड़ी के खरबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब भर में नहीं मिलेगा।'

'हाँ, देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस घुमा जमीन यहाँ माँग लूँगा और फलों के बूटे लगाऊँगा।'

'लाड़ी होराँ को भी यहाँ बुला लोगे ? या वही दूध पिलाने वाली फिरंगी मेम—'

'चुपकर। यहाँ वालों को शरम नहीं।'

'देश-देश की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिख तम्बाकू नहीं पीते। वह सिगरेट देने में हठ करती है, ओठों में लगाना

चाहती है, और मैं पीछे हटता हूँ तो समझती है कि राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुलक के लिए लडेगा नही ?

'अच्छा अब बोधासिह कैसा है ?'

'अच्छा है ।'

जैसे मैं जानता ही न होऊँ । 'रातभर तुम अपने दोनो कम्बल उसे ओढ़ाते हो और आप सिगडी के सहारे गुजर करते हो । उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो । अपने सूखे लकडी के तख्तो पर उसे सुलाते हो, आप कीचड मे पडे रहते हो । कहीं तुम मांदे न पड जाना । जाड़ा क्या है मौत है और 'निमोनिया' से मरने वालो को मुरब्बे नही मिला करते ।'

'मेरा डर मत करो । मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा । भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और मेरे हाथ के लगाए हुए आंगन के आम के पेड की छाया होगी ।'

वजीरासिंह ने त्योरी चढाकर कहा क्या मरने मारने की बाते लगाई है ! इतने मे एक कोने से पजाबी गीत की आवाज सुनाई दी । सारी खदक गीत से गूँज उठी और सिपाही फिर ताजे हो गए, मानो चार दिन से सोते और मौज ही करते रहे हो ।

[३]

दो पहर रात गई है । अँधेरा है । सन्नाटा छाया हुआ है । बोधासिह खाली बिस्कुटों के तीन टिनो पर अपने दोनो कम्बल बिछाकर और लहनासिंह के दो कम्बल और एक बरानकोट ओढ़कर सो रहा है । लहनासिंह पहरे पर खडा हुआ है । एक आंख खाई के मुख पर है और एक बोधासिह के दुबले शरीर पर । बोधासिह कराहा ।

'क्या बोधासिह भाई ! क्या है ?'

'पानी पिला दो ।'

लहनासिंह ने कटोरा उसके मुँह से लगाकर पूछा—'कहो, कैसे हो?' पानी पीकर बोधा बोला—'कँपनी छूट रही है। रोम रोम के तार दौड़ रहे हैं। दाँत बज रहे हैं।

'अच्छा, मेरी जरसी पहन लो।'

'और तुम ?'

'मेरे पास सिगड़ी है और मुझे गरमी लगती है। पसीना आ रहा है।'

'ना, मैं नहीं पहनता, चार दिन से तुम मेरे लिए—'

'हाँ, याद आई। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सबेरे ही आई है। विलायत से मेमें बुन बुनकर भेज रही हैं। गुरु उनका भला करे। यों कहकर लहना अपना कोट उतार कर जरसी उतारने लगा।

'सच कहते हो ?'

'और नहीं झूठ ?' यों कहकर नाहीं करते बोधा को उसने जबरदस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट, जीन का कुरता पहनकर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी।

आधा घंटा बीता। इतने में खाई के मुँह से आवाज आई—'सूबेदार हजारासिंह।'

कौन लपटन साहब ? हुक्म हुजूर ! कह कर सूबेदार तन कर फौजी सलाम करके सामने हुआ।

'देखो, इसी दम धावा करना होगा। मील भर की दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मन खाई है। उसमें पचास से ज्यादा जर्मन नहीं हैं। इन पेड़ों के नीचे नीचे दो खेत काटकर रास्ता है। तीन-चार घुमाव हैं। जहाँ मोड़ है, वहाँ पन्द्रह जवान खड़े कर आया हूँ। तुम यहाँ दस आदमी छोड़कर सबको साथ ले उनसे जा मिलो। खंदक छीनकर वहीं जब तक दूसरा हुक्म न मिले डटे रहो। हम यहाँ रहेगा।'

'जो हुक्म।'

चुपचाप सब तैयार होगए। बोधा भी कम्बल उतारकर चलने लगा। तब लहनासिंह ने उसे रोका। लहनासिंह आगे हुआ, तो बोधा के बाप सूबेदार ने उँगली से बोधा की ओर इशारा किया। लहनासिंह समझकर चुप हो गया। पीछे दस आदमी कौन रहे, इस पर बडी हुज्जत हुई। कोई रहना न चाहता था, समझा-बुझाकर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहब लहना को सिगडी के पास मुँह फेर कर खडे हो गये और जेब से सिगरेट निकालकर सुलगाने लगे। दस मिनट के बाद उन्होने लहना की ओर हाथ बढाकर कहा—'लो तुम भी पियो।'

आँख मारते मारते लहनासिंह समझ गया। मुँह का भाव छिपा कर बोला—'लाओ, साहब।' हाथ आगे करते ही उसने सिगडी के उजाले में साहब का मुँह देखा, बाल देखे, तब उसका माथा ठनका। लपटन साहब के पट्टियो वाले बाल एक दिन में कहाँ उड गये और उनकी जगह कैदियो के से कटे हुए बाल कहा से आ गए ?

शायद साहब शराब पिये हुए हैं और उन्हे बाल कटवाने का मौका मिल गया है ? लहनासिंह ने जाचना चाहा। लपटन साहब पाँच वर्ष से उनकी रेजीमेट में थे।

'क्यो साहब, हम हिन्दुस्तान कब जायँगे ?'

'लडाई खत्म होने पर। क्यो क्या यह देश पसन्द नहीं ?'

'नही साहब, शिकार के वे मजे यहाँ कहाँ ? याद है, पारसाल नकली लडाई के पीछे हम आप जगाधरी के जिले मे शिकार करने गये थे—'हाँ, हाँ'—वही, जब आप खोटे× पर सवार थे। और आपका खानसामा अब्दुल्ला रास्ते के एक मन्दिर मे जल चढाने को रह गया था ? 'बेशक, पाजी कहीं का। सामने से वह नीलगाय निकली कि ऐसी बडी मैंने कभी न देखी थी। और आपकी एक गोली कधे मे लगी और पुट्ठे में निकली। ऐसे अफसर के साथ शिकार खेलने मे मजा है। क्यो साहब,

×गधे।

शिमले से तैयार होकर उस नीलगाय का सिर आ गया था न ? आपने कहा था कि रेजिमेंट की मैस मे लगायेंगे। 'हाँ, पर मैंने वह वलायत भेज दिया' ऐसे बड़े बड़े सींग। दो दो फुट के तो होंगे ?'

'हाँ लहनासिंह, दो फुट चार इञ्च के थे, तुमने सिगरेट नहीं पिया ?'

'पीता हूँ साहब, दियासलाई ले आता हूँ' कहकर लहनासिंह खन्दक मे घुसा। अब उसे सन्देह नहीं रहा था। उसने झटपट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिये।

अंधेरे मे किसी सोने वाले से वह टकराया।

'कौन ? वजीरासिंह ?

'हाँ क्यो लहना ? क्या कयामत आ गई ? जरा तो आँख लगने दी होती ?

[४]

'होश मे आओ। कयामत आई है और लपटन साहब की वर्दी पहन कर आई है ?'

'क्या ?'

'लपटन साहब या' तो मारे गये हैं या कैद होगए हैं। उनकी वर्दी पहनकर यह कोई जर्मन आया है। सूबेदार ने इसका मुँह नही देखा, मैंने देखा है और बातें की हैं। सोहरा* साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू। और मुझे पीने को सिगरेट दिया है ?'

'तो अब ?'

'अब मारे गये। धोखा है। सूबेदार होरां कीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगे और यहाँ खाई पर धावा होगा। उधर उन पर खुले मे धावा होगा। उठो, एक काम करो। पल्टन के पैरों के निशान देखते देखते दौड़ जाओ। अभी बहुत दूर न गए होंगे। सूबेदार से कहो कि एकदम लौट

---

*सुसरा (गाली)

आवे। खदक को बात भूठ है चले जाओ, चंदक के पीछे से निकल जाओ। पत्ता तक न खुड़के। देर मत करो।'

हुकुम तो यह है कि यही—

'ऐसी तैसी हुकुम की। मेरा हुकुम-जमादार लहनासिंह जो इस वक्त यहाँ सबसे बड़ा अफसर है उसका हुकुम है। मैं लपटन साहब की खबर लेता हूँ।'

'पर यहाँ तो तुम आठ ही हो।'

'आठ नही दस लाख। एक-एक अकाली सिख सवा लाख के बराबर होता है। चले जाओ।

लौट कर खाई के मुहाने पर लहनासिंह दीवार से चिपक गया। उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेल के बराबर तीन गोले निकाले। तीनों को तीन जगह खदक की दीवारों मे घुसेड़ दिया और तीनो मे एक तार-सा बाँध दिया। तार के आगे सूत की एक गुत्थी थी, जिसे सिगड़ी के पास रखा। बाहर की तरफ जाकर एक दियासलाई जलाकर गुत्थी पर रखने—

बिजली की तरह दोनों हाथों से उल्टी बन्दूक को उठाकर लहनासिंह ने साहब की कुहनी पर तान कर दे मारा। धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलाई गिर पड़ी। लहनासिंह ने एक कुन्दा साहब की गर्दन पर मारा और साहब 'आँख। मीन गौट कहते हुए चित्त हो गये। लहनासिंह ने तीन गोले बीनकर खदक के बाहर फेंके और साहब को घसीटकर सिगड़ी के पास से हटाया। जेबों की तलाशी ली। तीन चार लिफाफे और एक डायरी निकालकर उन्हें अपनी जेब के हवाले किया।

साहब की मूर्छा हटी। लहनासिंह हँसकर बोला—'क्यो लपटन साहब? मिजाज कैसा है? आज मैंने बहुत बातें सीखी। यह सीखा कि सिख सिगरेट पीते हैं। यह सीखा कि जगाधारीके जिले मे नीलगाय होती हैं

*हाय! मेरे राम! (जर्मन)

श्रौर उनके दो फुट श्रौर चार इंच के सीग होते हैं। यह सीखा है कि मुसलमान खानसामा मूर्तियो पर जल चढ़ाते है श्रौर लपटन साहब खोते पर चढ़ते है, पर यह तो कहो, ऐसा साफ उर्दू कहाँ से सीख आये? हमारे लपटन साहब तो बिना 'डेम' के पाँच लफ्ज भी नही बोला करते थे।

लहना ने पतलून की जेबो की तलाशी नही ली थी। साहब ने, मानो जाडे से बचने के लिए, दोनो हाथ जेबो मे डाले।

लहनासिंह कहता गया—'चालाक तो बडे हो, पर माझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है। उसे चकमा देने के लिए चार श्रॉंखे चाहिए। तीन महीने हुए, एक तुरकी मौलवी मेरे गाँव मे आया था। श्रौरतो को बच्चे होने का ताबीज बाँटता था श्रौर बच्चो को दवाई देता था। चौधरी के बड के नीचे मजा़क बिछाकर हुक्का पीता रहता था श्रौर कहता था कि जर्मनी वाले बडे पण्डित है। वेद पढ़-पढ़कर उनमें से विमान चलाने की विद्या जान गये है। गौ को नही मारते। हिन्दुस्तान मे आ जायेगे तो गौ हत्या बन्द कर देगे। मडी मे बनियो को बहकाया था कि डाकखाने से रुपये निकाल लो, सरकार का राज्य जाने वाला है। डाक-बाबू पोल्हूराम भी डर गया था। मैंने मुल्लाजी की दाढी मूँड दी थी श्रौर गाँव से बाहर निकाल कर कहा था कि जो मेरे गाँव मे अब पैर रक्खा तो–

साहब की जेब में से पिस्तौल चला श्रौर लहना की जाँघ मे गोली लगी। इधर लहना की हैनरी मार्टिन के दो फायरों ने साहब की कपाल क्रिया कर दी। धड़ाका सुनकर सब दौड आये।

बोधा चिल्लाया—'क्या है'?

लहनासिंहने तो उसे यह कहकर सुला दिया कि 'एक हडका हुआ कुत्ता आया था, मार दिया, श्रौर श्रौरो से सब हाल कह दिया। सब बन्दूके लेकर तैयार होगये। लहना ने साफा फाड़कर घाव के दोनो तरफ पट्टियाँ कसकर बाँधी घाव मांस मे ही था। पट्टियो के कसने से लहू निकलना बन्द हो गया।

* पटिया

इतने में सत्तर जर्मन चिल्ला कर खाई में घुस पड़े। सिक्खों की बन्दूकों की बाढ़ ने पहले धावे को रोका। पर यहाँ थे आठ (लहनासिंह तक्-तक कर मार रहा था वह खड़ा था, और, और लेटे हुए थे) और सत्तर। अपने मुर्दा भाइयों के शरीर पर चढ़कर जर्मन आगे घुसे आते थे।

अचानक आवाज आई 'वाह गुरुजी की फतह! वाह गुरुजीदा खालसा!' और धड़ाधड़ बन्दूकों के फायर जर्मनों की पीठ पर पड़ने लगे। ऐसे मौके पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच में आ गये। पीछे से सूबेदार हजारा सिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने लहनासिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछे वालों ने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया। एक किलकारी और—'अकाल सिक्खों की फौज आई। वाह गुरुजी की फतह! वाह गुरुजी दा खालसा!! सत श्री अकाल पुरुष!!!, और लड़ाई खतम हो गई। तिरसठ जर्मन या तो खेत रहे थे या कराह रहे थे। सिक्खों में पन्द्रह के प्राण गये। सूबेदार के दाहिने कंधे में से गोली आर-पार निकल गई। लहनासिंह की पसली में एक गोली लगी। उसने घाव को खदक की गीली मिट्टी से पूर लिया और बाकी को साफा कसकर कमरबंद की तरह लपेट लिया। किसी को मालूम न हुई कि लहना को दूसरा घाव—भारी लगा है।

लड़ाई के समय चाँद निकल आया था, ऐसा चाँद जिसके प्रकाश से संस्कृत-कवियों का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है और हवा ऐसी चल रही थी जैसी कि बाणभट्ट की भाषा में 'दन्तवीणोपदेशाचार्य्य' कहलाती। वजीरासिंह कह रहा था कि कैसे मन-मन भर फ्रांस की भूमि मेरे बूटों में चिपक रही थी, जब से मैं दौड़ा-दौड़ा सूबेदार के पास गया था। सूबेदार ने लहनासिंह से सारा हाल सुना और कागजात पाकर वे उसकी तुरत बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।

इस लडाई की आवाज तीन मील दाहिनी ओर की खाई वालो ने सुन ली थी। उन्होने पीछे टेलीफोन कर दिया था। वहाँ से झटपट दो डाक्टर और दो बीमार ढोने की गाडियाँ चली, जो कोई डेढ घंटे के अन्दर अन्दर आ पहुँची। फील्ड अस्पताल नजदीक था। सुबह होते वहाँ पहुँच जायेंगे, इसलिए मामूली पट्टी बाँध कर एक गाडी मे घायल लिटाये गये और दूसरी मे लाशे रखी गईं। सूबेदार ने लहनासिंह की जाँघ मे पट्टी बँधवानी चाही, पर उसने यह कहकर टाल दिया कि थोडा घाव है, सबेरे देखा जायगा। बोधासिंह ज्वर मे बर्रा रहा था। वह गाडी मे लिटाया गया। लहना को छोडकर सूबेदार जाते नही थे। यह देख लहना ने कहा—तुम्हें बोधा की कसम है और सूबेदारनीजी की सौगन्ध है, जो इस गाडी मे न चले जाओ।'

'और तुम ?'

'मेरे लिए वहाँ पहुँच कर गाडी भेज देना। और जर्मन मुर्दों के लिए भी तो गाडी आती होगी। मेरा हाल बुरा नही है। देखते नही, मैं खडा हूँ ? वजीरासिंह मेरे पास ही है।'

'अच्छा पर—'

'बोधा गाडी पर लेट गया ? भला। आप भी चढ आओ। सुनिए तो, सूबेदारनी होरॉ को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उसने कहा था, वह मैंने कर दिया।'

गाडियाँ चल पडी थी। सूबेदार ने चढते-चढते लहना का हाथ पकड कर कहा—'तूने मेरे और बोधा के प्राण बचाये हैं। लिखना कैसा ? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी से तू ही कह देना। उसने क्या कहा था?

'अब आप गाडी पर चढ जाओ। मैंने जो कहा, वह लिख देना।'

'गाडी के जाते ही लहना लेट गया—'वजीरा पानी पिला दे और मेरा कमरबन्द खोल दे। तर हो रहा है।'

[५]

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्म भर की घटनाएँ एक एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ होते हैं, समय की धुन्ध बिलकुल उन पर से हट जाती है।

× × × ×

लहनासिंह बारह वर्ष का है। अमृतसर में मामा के यहाँ आया हुआ है। दही वाले के यहाँ, सब्जीवाले के यहाँ, कहीं उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता है तेरी कुड़माई हो गई ? तब 'धत्' कह कर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा तो उसने कहा—हाँ, कल हो गई, देखते नहीं यह रेशम के फूलों वाला सालू ? सुनते ही लहनासिंह को दुःख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ ?

× × × ×

पच्चीस वर्ष बीत गये। अब लहनासिंह नं० ७७ रैफल्स में जमादार हो गया है। उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न मालूम वह कभी मिली थी, या नहीं। सात दिन की छुट्टी लेकर जमीन के मुकदमे की पैरवी करने वह अपने घर गया। वहाँ रेजिमेंट के अफसर की चिट्ठी मिली कि फौज लाम पर जा रही है। फौरन चले आओ। साथ ही सूबेदार हजारा सिंह की चिट्ठी मिली कि मैं और बोधासिंह भी लाम पर जाते हैं। लौटते हुए हमारे घर होते जाना। साथ चलेंगे। सूबेदार का गाँव रास्ते में पड़ता था और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहनासिंह सूबेदार के यहाँ पहुँचा।

जब चलने लगे, तब सूबेदार 'बेढ़े'* में से निकल कर आया। बोला—'लहना, सूबेदारनी तुमको जानती हैं। बुलाती हैं। ? कब से ? रेजिमेंट के क्वार्टरों में तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नहीं। दरवाजे पर जाकर, 'मत्था टेकना' कहा। असीस सुनी। लहनासिंह चुप।

*जनाने।

'मुझे पहचाना ?'

'नहीं।'

'तेरी कुड़माई हो गई ?—धत्—कल हो गई—देखते नहीं रेशमी बूटों वाला साल—अमृतसर में—'

भावों की टकराहट से मूर्छा खुली। करवट बदली। पसली का घाव बह निकला।

'वजीरा, पानी पिला' —'उसने कहा था।'

× × × ×

स्वप्न चल रहा है सूबेदारनी कह रही है—मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो भाग फूट गये। सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है, लायलपुर में जमीन दी है, आज नमकहलाली का मौका आया है। पर सरकार ने हम तीमियों× की एक घघरिया पलटन क्यों न बना दी जो मैं भी सूबेदारजी के साथ चली जाती ? एक बेटा है। फौज में भर्ती हुए उसे एक ही बरस हुआ। उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया।' सूबेदारनी रोने लगी—'अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग ! तुम्हें याद है, एक दिन टाँगे वाले का घोड़ा दही वाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे। आप घोड़े की लातों में चले गये थे और मुझे उठा कर दुकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।'

रोती-रोती सूबेदारनी ओबरी* में चली गई। लहना भी आँसू पोंछता हुआ बाहर आया।

'वजीरासिंह, पानी पिला—'उसने कहा था।'

×स्त्रियाँ। *अन्दर का घर।

लहना का सिर अपनी गोद में रखे वजीरासिंह बैठा है। जब मांगता है, तब पानी पिला देता है। आध घटे तक लहना चुप रहा, फिर बोला —कौन? कीरतसिंह?'

वजीरा ने कुछ समझ कर कहा—'हाँ।'

'भइया, मुझे और ऊँचा कर ले। अपने पट+ पर मेरा सिर रखले।'

'हाँ, अब ठीक है। पानी पिला दे। बस, अब के हाड× में यह आम खूब फलेगा। चाचा भतीजा दोनों यहीं बैठ कर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है, उतना ही यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था, उसी महीने में मैंने इसे लगाया था।

वजीरासिंह के आँसू टप-टप टपक रहे थे।

× × × ×

कुछ दिन पीछे लोगों ने अखबारों में पढ़ा—फ्रांस और बेल्जियम—६८ वीं सूची—मैदान में घावों से मरा—नं० ७७ सिख राइफल्स जमादार लहनासिंह।

+जाँघ ×आषाढ़।

श्री प्रेमचन्द्र

३. बड़े भाई साहब

[१]

मेरे भाई साहब मुझसे पाँच साल बड़े थे, लेकिन केवल तीन दरजे आगे। उन्होंने भी उसी उम्र में पढ़ना शुरू किया था, जब मैंने शुरू किया, लेकिन तालीम जैसे महत्व के मामले में वह जल्दबाजी से काम लेना पसंद न करते थे, इस भवन की बुनियाद खूब मजबूत डालनी चाहते थे, जिस पर आलीशान महल बन सके। एक साल का काम दो साल में करते थे। कभी कभी तीन साल भी लग जाते थे। बुनियाद ही पुख्ता न हो, तो मकान कैसे पायेदार बने।

मैं छोटा था, वह बड़े थे। मेरी उम्र नौ साल की, वह चौदह साल के थे। उन्हें मेरी तम्बीह और निगरानी का पूरा और जन्मसिद्ध अधिकार था। और मेरी शालीनता इसी में थी कि उनके हुक्म को कानून समझूँ।

वह स्वभाव के बड़े अध्ययनशील थे। हरदम किताब खोले बैठे रहते। और शायद दिमाग को आराम देने के लिए कभी कापी पर, कभी किताब के हाशियों पर, चिड़ियों, कुत्तों, बिल्लियों की तस्वीरें बनाया करते थे। कभी-कभी एक ही नाम या शब्द या वाक्य दस बीस बार लिख डालते। कभी एक शेर को बार बार सुन्दर अक्षरों में नकल करते। कभी ऐसी शब्द रचना करते जिसमें न कोई अर्थ होता न कोई सामंजस्य। मसलन एक बार उनकी कापी पर मैंने इबारत देखी—'स्पेशल, अमीना, भाइयों-भाइयों दर असल, भाई-भाई राधेश्याम, श्रीयुत राधेश्याम, एक घंटे तक'—

इसके बाद एक आदमी का चेहरा बना हुआ था। मैंने बहुत चेष्टा की कि इस पहेली का कोई अर्थ निकालूँ, लेकिन असफल रहा। और उनसे पूछने का साहस न हुआ। वह नवीं जमाअत में थे, मैं पाँचवीं में। उनकी रचनाओं को समझना मेरे लिए छोटा मुँह बड़ी बात थी।

मेरा जी पढ़ने में बिलकुल न लगता था। एक घंटा भी किताब लेकर बैठना पहाड़ था। मौका पाते ही होस्टल से निकल कर मैदान में आ जाता, और कभी कंकरियाँ उछालता, कभी कागज की तितलियाँ उड़ाता, और कहीं कोई साथी मिल गया, तो पूछना ही क्या? कभी चहारदीवारी पर चढ़ कर नीचे कूद रहे हैं, कभी फाटक पर सवार उसे आगे पीछे चलाते हुए मोटर का आनन्द उठा रहे हैं, लेकिन कमरे में आते ही भाई साहब का वह रुद्र-रूप देखकर प्राण सूख जाते। उनका पहला सवाल होता—कहाँ थे? हमेशा यही सवाल, इसी ध्वनि में हमेशा पूछा जाता था और इसका जवाब मेरे पास केवल मौन था। न जाने मेरे मुँह से यह बात क्यों न निकलती कि जरा बाहर खेल रहा था। मेरा मौन कह देता था कि मुझे अपना अपराध स्वीकार है और भाई साहब के लिए इसके सिवा और कोई इलाज न था कि स्नेह और रोष से मिले हुए शब्दों में मेरा सत्कार करें।

इस तरह अँगरेजी पढ़ोगे, तो जिन्दगी भर पढ़ते रहोगे, और एक हर्फ न आएगा। अँगरेजी पढ़ना कोई हँसी खेल नहीं है कि जो चाहे पढ़ ले, नहीं ऐरा गैरा नत्थू-खैरा सभी अँगरेजी के विद्वान हो जाते। यहाँ रात-दिन आँखें फोड़नी पड़ती हैं, और खून जलाना पड़ता है तब कहीं यह विद्या आती है, और आती क्या है, हाँ कहने को आ जाती है। बड़े-बड़े विद्वान भी शुद्ध अँगरेजी नहीं लिख सकते, बोलना तो दूर रहा, और मैं कहता हूँ कि तुम कितने घोंघा हो कि मुझे देखकर भी सबक नहीं लेते, मैं कितनी मिहनत करता हूँ यह तुम अपनी आँखें देखते हो, अगर नहीं देखते, तो यह तुम्हारी आँखों का कसूर है, तुम्हारी बुद्धि का कसूर है। इतने मेले-तमाशे होते हैं, मुझे तुमने कभी देखने जाते देखा है? रोज

क्रिकेट और हाकी-मैच होते है, मैं पास नही फटकता। हमेशा पढता रहता हूँ। उस पर भी एक एक दरजे मे दो दो तीन-तीन साल पडा रहता हूँ, फिर तुम कैसे आशा करते हो कि तुम यो खेल-कूद मे वक्त गँवाकर पास हो जाओगे। मुझे दो ही तीन साल लगते हैं, तुम उम्र भर इसी दरजे मे पडे सडते रहोगे। अगर तुम्हे इस तरह उम्र गँवानी है, तो बेहतर है घर चले जाओ और मजे से गुल्ली डडा खेलो, दादा की गाढी कमाई के रुपये क्यो बरबाद करते हो?"

मै यह लताड सुनकर आँसू बहाने लगता। जवाब ही क्या। अपराध तो मैंने किया, लताड कौन सहे। भाई साहब उपदेश की कला मे निपुण थे। ऐसी ऐसी लगती बातें कहते, ऐसे ऐसे सूक्ति-बाण चलाते, कि मेरे जिगर के टुकडे टुकडे हो जाते और हिम्मत टूट जाती। इस तरह जान तोडकर मेहनत करनेकी शक्ति मैं अपने मे न पाता था और उस निराशा मे जरा देर के लिए मैं सोचने लगता—क्यो न घर चला जाऊँ। जो काम मेरे बूते के बाहर है, उसमे हाथ डालकर क्यो अपनी जिन्दगी खराब करूँ। मुझे अपना मूर्ख रहना मंजूर था, लेकिन उतनी मेहनत—मुझे तो चक्कर आ जाता था, लेकिन घटे दो घटे के बाद निराशा के बादल फट जाते और मैं इरादा करता कि आगे से खूब जी लगाकर पढूँगा चटपट एक टाइम-टेबिल बना डालता। बिना पहले से नकशा बनाए, कोई स्कीम तैयार किए काम कैसे शुरू करूँ। टाइम-टेबिल मे खेल-कूद की मद बिलकुल उड जाती। प्रात काल उठना, छ बजे मुँह-हाथ धो, नाश्ता कर पढने बैठ जाना। छ से आठ तक अँगरेजी, आठ से नौ तक हिसाब, नौ साढ़े नौ तक इतिहास, फिर भोजन और स्कूल। साढे तीन बजे स्कूल से वापस होकर आध घंटा आराम, चार से पाँच तक भूगोल पाँच से छ. तक ग्रामर, आधा घंटा होस्टल के सामने ही टहलना, साढ़े छ सात तक अङ्गरेजी कपोजीशन, फिर भोजन करके आठ से नौ तक अनुवाद, नौ से दस तक हिन्दी, दस से ग्यारह तक विविध विषय, फिर विश्राम।

मगर टाईम-टेबिल बना लेना एक बात है, उस पर अमल करना दूसरी बात। पहले ही दिनसे उसकी अवहेलना शुरू हो जाती। मैदान की वह सुखद हरियाली,हवाके वह हलके-हलके झोंके, फुटबाल की वह उछल कूद, कबड्डी के वह दाँव-घात, वालीबाल की वह तेजी और फुरती मुझे अज्ञात और अनिवार्य रूप से खींच ले जाती और वहाँ जाते ही मैं सब कुछ भूल जाता। वह जान-लेवा टाइम-टेबिल, वह आँखफोड़ पुस्तकें,किसी की याद न रहती, और फिर भाई साहब को नसीहत और फजीहत का अवसर मिल जाता। मैं उनके साये से भागता, उनकी आँखों से दूर रहने की चेष्टा करता, कमरे में इस तरह दबे पाँव आता कि उन्हें खबर न हो, उनकी नजर मेरी ओर उठी और मेरे प्राण निकले। हमेशा एक नंगी तलवार सी लटकती मालूम होती। फिर भी जैसे मौत और विपत्ति के बीच में भी आदमी मोह और माया के जीवन में जकड़ा रहता है, मैं फटकार और घुड़कियाँ खाकर भी खेल-कूद का तिरस्कार न कर सकता।

[२]

सालाना इम्तहान हुआ। भाई साहब फेल हो गए, मैं पास हो गया और दरजे में प्रथम आया। मेरे और उनके बीच में केवल दो साल का अन्तर रह गया। जी में आया भाई साहब को आड़े हाथों लूँ—आपकी वह घोर तपस्या कहाँ गई। मुझे देखिए, मजे से खेलता भी रहा और दरजे में अव्वल भी हूँ, लेकिन वह इतने दुखी और उदास थे कि मुझे उनसे दिली हमदर्दी हुई और उनके घाव पर नमक छिड़कने का विचार ही लज्जास्पद जान पड़ा। हाँ, अब मुझे अपने ऊपर कुछ अभिमान हुआ और आत्मसमान भी बढ़ा। भाई साहब का वह रोब मुझ पर न रहा। आजादी से खेल-कूद में शरीक होने लगा, दिल मजबूत था। अगर उन्होंने फिर मेरी फजीहत की, तो साफ कह दूँगा—आपने अपना खून जलाकर कौन सा तीर मार लिया। मैं तो खेलते कूदते दरजे में अव्वल आ गया। जबान से यह हेकड़ी जताने का साहस न होने पर भी मेरे

रंग ढंग से साफ जाहिर होता था कि भाई साहब का वह आतंक मुझपर नही है। भाई साहब ने इसे भाप लिया–उनकी सहज बुद्धि बडी तीव्र थी और एक दिन जब मैं भोरका सारा समय गुल्ली-डंडा की भेंट करके ठीक भोजन के समय लौटा, तो भाई साहब ने मानो तलवार खींच ली और मुझ पर टूट पडे—'देखता हूँ, इस साल पास हो गए और दरजे में अौवल आ गए, तो तुम्हे दिमाग हो गया है, मगर भाई जान, घमण्ड तो बडे बडो का नही रहा, तुम्हारी क्या हस्ती है। इतिहास में रावण का हाल तो पढा ही होगा। उसके चरित्र से तुमने कौन सा उपदेश लिया ? या यो ही पढ़ गए ? महज इम्तहान पास कर लेना कोई बड़ी चीज नही, असल चीज है बुद्धि का विकास। जो कुछ पढो, उसका अभिप्राय समझो। रावण भू-मण्डल का स्वामी था। ऐसे राजाओ को चक्रवर्ती कहते है। आजकल अङ्गरेजों के राज का विस्तार बहुत बढा हुआ है, पर इन्हे चक्रवर्ती नही कह सकते। ससार में अनेका राष्ट्र अङ्गरेजो का आधिपत्य स्वीकार नहीं करते। बिलकुल स्वाधीन हैं। रावण चक्रवर्ती राजा था, ससार के सभी महीप उसे कर देते थे। बडे-बडे देवता उसकी गुलामी करते थे। आग और पानी के देवता भी उसके दास थे, मगर उसका अन्त क्या हुआ ? घमण्ड ने उसका नाम निशान तक मिटा दिया, उसे एक चुल्लू पानी देने वाला भी न बचा। आदमी और जो चाहे कुकर्म करे पर अभिमान न करे इतराए नही, अभिमान किया और दीन-दुनियाँ दोना से गया। शैतान का हाल भी पढा ही होगा। उसे यह अभिमान हुआ था कि ईश्वर का उससे बढ कर सच्चा भक्त कोई है ही नही। अन्त यह हुआ कि स्वर्ग से नरक में ढकेल दिया। शाहे रूम ने भी एक बार अहकार किया था। भीख मांग-मांग कर मर गया। तुमने तो अभी केवल एक दरजा पास किया है, और अभी से तुम्हारा सिर फिर गया तब तो तुम आगे बढ चुके। यह समझ लो कि तुम अपनी मेहनत से नही पास हुए अन्धे के हाथ बटेर लग गई। मगर बटेर केवल एक बार लग सकती है बार बार नहीं लग सकती। कभी गुल्ली डंडे में भी अन्धाचोट निशाना पड

जाता है। इससे कोई सफल खिलाडी नही हो सकता। सफल खिलाडी वह है, जिसका कोई निशाना खाली न जाय। मेरे फेल होने पर मत जाओ। मेरे दरजे मे आओगे, तो दाँतो पसीना आ जायगा, जब ऐल जबरा और जामेट्री के लोहे के चने चबाने पडेगे और इगलिस्तान का इतिहास पढ़ना पडेगा। बादशाहो के नाम याद रखना आसान काम नही। आठ आठ हेनरी हो गुजरे हैं। कौन-सा काड किस हेनरी के समय में हुआ, क्या यह याद कर लेना आसान समझते हो? हेनरी सातवें की जगह, हेनरी आठवाँ लिखा और सब नम्बर गायब। सफाचट। सिफर भी न मिलेगा, सिफर भी। हो किस खयाल मे। दरजनो तो जेम्स हुए हैं, दरजनो विलियम, कोडियो चार्ल्स। दिमाग चक्कर खाने लगता है। आँधी रोग हो जाता है। इन अभागो को नाम भी न जुडते थे। एक ही नाम के पीछे दोयम, सोयम, चहारम, पचम लगाते हुए चले गये। मुझ से पूछते, तो दस लाख नाम बता देता। और जोमेटी तो बस खुदा की पनाह। अ ज ब की जगह अ ब ज लिख दिया और सारे नम्बर कट गए। कोई इन निर्दयी मुमतहिनो से नही पूछता कि आखिर अ ज ब और अ ब ज मे क्या फर्क है और व्यर्थ की बात के लिए क्यो छात्रो का खून करते हो। दाल-भात-रोटी खाई या भात-दाल-रोटी खाई, इसमें क्या रक्खा है, मगर इन परीक्षको को क्या परवाह। वह तो वही देखते हैं जो पुस्तक मे लिखा है। चाहते हैं कि लडके अक्षर-अक्षर रट डाले। और इसी रटन का नाम शिक्षा रख छोड़ा है। और आखिर इन बे-सिर-पैर की बातो के पढ़ाने से क्या फायदा? इस रेखा पर वह लम्ब गिरा दो, तो आधार लम्ब से दुगुना होगा। पूछिए इससे प्रयोजन? दुगुना नही चौगुना हो जाय या आधा ही रहे, मेरी बला से, लेकिन परीक्षा मे पास होना है, तो यह सब खुराफात याद करना पडेगा। कह दिया—'समय की पाबंदी' पर एक लेख लिखो, जो चार पन्नो से कम न हो। अब आप कापी सामने खोले, कलम हाथ में लिए उसके नाम को रोइए। कौन नही जानता कि समय की पाबन्दी

बहुत अच्छी बात है, इससे आदमी के जीवन मे संयम आ जाता है, दूसरों का उस पर स्नेह होने लगता है और उसके कारोबार में उन्नति होती है लेकिन इस जरा-सी बात पर चार पन्ने कैसे लिखे। जो बात एक वाक्य में कही जा सके, उसे चार पन्नो मे लिखने की जरूरत! मै तो इसे हिमाकत कहता हूँ। यह तो समय की किफायत नही, बल्कि उसका दुरुपयोग है कि व्यर्थ मे किसी बात को ठूस दिया जाय। हम चाहते हैं, आदमी को जो कुछ कहना हो चटपट कह दे और अपनी राह ले। मगर नहीं आपको चार पन्ने रँगने पड़ेगे, चाहे जैसे लिखिए। और पन्ने भी पूरे फुलस्केप के आकार के, यह छात्रो पर अत्याचार नही तो और क्या है? अनर्थ तो यह है कि कहा जाता है संक्षेप मे लिखो। समय की पाबंदी पर संक्षेप में एक निबन्ध लिखो, जो चार पन्नो मे कम न हो। ठीक! संक्षेप में तो चार पन्ने हुए, नही शायद सौ दो सौ पन्ने लिखवाते। तेज भी दौड़िए और धीरे-धीरे भी। है उल्टी बात या नहीं, बालक भी इतनी सी बात समझ सकता है, लेकिन इन अध्यापको को इतनी तमीज भी नही, उस पर दावा है कि हम अध्यापक है। मेरे दरजे मे आओगे लाला, तो ये सारे पापड़ बेलने पड़ेगे और तब आटे-दाल का भाव मालूम होगा। इस दरजे मे अव्वल आ गये हो, तो जमीन पर पाँव नही रखते, इसलिए मेरा कहना मानिए। लाख फेल हो गया हूँ, लेकिन तुमसे बड़ा हूँ, संसार का मुझे तुम से कहीं ज्यादा अनुभव है। जो कुछ कहता हूँ, उसे गिरह बाँधिये, नहीं पछताइएगा।'

स्कूल का समय निकट था, नही ईश्वर जाने कब यह उपदेश माला समाप्त होती। भोजन आज मुझे निःस्वाद सा लग रहा था, जब पास होने पर यह तिरस्कार हो रहा है, तो फेल हो जाने पर शायद प्राण ही ले लिए जायें। भाई साहब ने जो अपनी पढ़ाई का भयंकर चित्र खींचा था, उसने मुझे भयभीत कर दिया। कैसे स्कूल छोड़कर घर नहीं भागा यही ताज्जुब है, लेकिन इतने तिरस्कार पर भी पुस्तकों में मेरी अरुचि ज्यों-की त्यों बनी रही। खेल-कूद का कोई अवसर हाथ से न जाने देता

पढ़ना भी था, मगर बहुत कम,बस इतना कि रोज का टास्क पूरा हो जाय और दरजे मे जलील न होना पडे। अपने ऊपर जो विश्वास पैदा हुआ था, वह फिर लुप्त हो गया और फिर आवारो का सा जीवन कटने लगा।

[३]

फिर सालाना इम्तहान हुआ और कुछ ऐसा सयोग हुआ कि मै फिर पास हुआ और भाई साहब फेल हो गए। मैने बहुत मेहनत नही की, पर न जाने दरजे मे कैसे अव्वल आ गया। मुझे खुद अचरज हुआ। भाई साहब ने प्राणान्त परिश्रम किया था। कोर्स का एक एक शब्द चाट गए थे दस बजे रात तक इधर, चार बजे भोर से इधर, छ से साढे नौ तक स्कूल जाने के पहले। मुद्रा कान्ति हीन हो गई थी, मगर बेचारे फेल हो गए। मुझे तो उन पर दया आती थी। नतीजा सुनाया गया, तो वह रो पडे और मै भी रोने लगा। अपने पास होने की खुशी आधी हो गई। मै भी फेल हो गया होता तो भाई साहब को इतना दु ख नही होता, लेकिन विधि की बात कौन टाले।

मेरे और भाई साहब के बीच एक दरजे का अन्तर और रह गया। और मैंने मन मे एक कुटिल भावना उदय हुई कि कही भाई साहब एक साल और फेल हो जायें, तो मैं उनके बराबर हो जाऊँ, फिर वह किस आधार पर मेरी फजीहत कर सकेंगे, लेकिन मैंने इस कमीने विचार को बलपूर्वक दिल से निकाल डाला। आखिर वह मुझे मेरे हित के विचार से ही डाँटते हैं। मुझे इस वक्त अप्रिय लगता है अवश्य, मगर शायद यह उनके उपदेशों का ही असर हो कि मैं दनादन पास होता जाता हूँ, और इतने अच्छे नम्बरों से।

अबकी भाई साहब बहुत कुछ नरम पड गए थे। कई बार मुझे डाँटने का अवसर पाकर भी उन्होने धीरज से काम लिया। शायद अब वह खुद समझने लगे थे कि मुझे डाँटने का अधिकार उन्हे नही रहा, या रहा, तो बहुत कम। मेरी स्वच्छन्दता भी

बढ़ी। मैं उनकी सहिष्णुता का अनुचित लाभ उठाने लगा। मुझे कुछ ऐसी धारणा हुई कि मैं तो पास हो ही जाऊँगा, पढ़ूँ या न पढ़ूँ, मेरी तकदीर बलवान है, इसलिए भाईसाहब के डर से जो थोड़ा बहुत पढ़ लिया करता था वह भी बन्द हो गया। मुझे कनकौए उड़ाने का नया शौक पैदा हो गया था और अब सारा समय पतगबाजी में ही भेंट होता था, फिर भी मैं भाई साहब का अदब करता था और उनकी नजर बचाकर कनकौए उड़ाता था। माँझा देना, कन्ने बाँधना, पतग-टूर्नामेंट की तैयारियाँ आदि समस्याएँ सब गुप्त रूप से हल की जाती थी। मैं भाई साहब को यह सदेह न करने देना चाहता था कि उनका सम्मान और लिहाज मेरी नजर में कम हो गया है।

एक दिन सध्या समय, होस्टल से दूर, मैं एक कनकौआ लूटने बेहताशा दौड़ा जा रहा था। आँखें आसमान की ओर थी और मन उस आकाशगामी पथिक की ओर, जो मन्दगति से झूमता पतन की ओर चला आ रहा था, मानो कोई आत्मा स्वर्ग से निकलकर विरक्त मन से नए सस्कार ग्रहण करने जा रही हो। बालकों की एक पूरी सेना लग्गे और झाडदार बाँस लिए उसका स्वागत करने को दौड़ी आ रही थी। किसी को आगे पीछे की खबर न थी। सभी मानो उस पतग के साथ ही आकाश मे उड़ रहे थे, जहाँ सब कुछ समतल है, न मोटर कारें हैं, न ट्राम, न गाडियाँ।

सहसा भाई साहब से मेरी मुठभेड़ हो गई, जो शायद बाजार से लौट रहे थे। उन्होने वही मेरा हाथ पकड़ लिया और उग्रभाव से बोले—'इन बाजारी लौंडो के साथ धेले के कनकौए के लिए दौड़ते तुम्हे शर्म नही आती? तुम्हें इसका भी कुछ लिहाज नही कि अब नीची जमाअत मे नही हो बल्कि आठवीं जमाअत म आ गए हो और मुझ से केवल एक दरजा नीचे हो। आखिर आदमी को कुछ भी तो अपने पोजीशन का खयाल करना चाहिए। एक जमाना था कि लोग आठवाँ दरजा पास करके नायब तहसीलदार हो जाते थे। मैं कितने ही मिडिलचियों को जानता हूँ, जो

आज अव्वल दरजे के डिप्टी मजिस्ट्रेट या सुपरिंटेंडेंट हैं। कितने ही आठवीं जमाअत वाले हमारे लीडर और समाचार पत्रों के संपादक हैं। बड़े बड़े विद्वान् उनकी मातहती में काम करते हैं। और तुम भी उसी आठवें दरजे में आवारा बाजारी लौंडों के साथ कनकौए के लिए दौड़ रहे हो। मुझे तुम्हारी इस कम अकली पर दुःख होता है। तुम जहीन हो, इसमें शक नहीं, लेकिन वह जेहन किस कामका, जो हमारे आत्मगौरव की हत्या कर डाले। तुम अपने दिल में समझते होंगे, मैं भाई साहब से महज एक दरजा नीचे हूँ, और अब उन्हें मुझको कुछ कहने का हक नहीं है, लेकिन यह तुम्हारी गलती है। मैं तुमसे पांच साल बड़ा हूँ और चाहे आज तुम मेरी ही जमाअत में आ जाओ और परीक्षकों का यही हाल है, तो निस्सन्देह अगले साल तुम मेरे समकक्ष हो जाओगे, और शायद एक साल बाद मुझसे तुम आगे भी निकल जाओ, लेकिन मुझमें और तुममें जो पांच साल का अन्तर है, उसे तुम क्या खुदा भी नहीं मिटा सकता। मैं तुमसे पांच साल बड़ा हूँ और हमेशा रहूँगा। मुझे दुनिया का और जिन्दगी का जो तजरबा है, तुम उसकी बराबरी नहीं कर सकते, चाहे तुम एम० ए० और डी० लिट्० और डी० फिल० ही क्यों न हो जाओ। समझ किताबें पढ़ने से नहीं आती, दुनियां देखने से आती है, हमारी अम्मा ने कोई दरजा नहीं पास किया और दादा भी पांचवीं-छठी जमाअत के आगे नहीं गए, लेकिन हम दोनों चाहे सारी दुनियां की विद्या पढ़ लें, अम्मा और दादा को हमें समझाने और सुधारने का अधिकार हमेशा रहेगा। केवल इसलिए नहीं कि वे हमारे जन्मदाता हैं, बल्कि इसलिए कि उन्हें दुनियां का हमसे ज्यादा तजरबा है और रहेगा। अमेरिका में किस तरह की राज्य-व्यवस्था है और आठवें हेनरी ने कितने ब्याह किए और आकाश में कितने नक्षत्र हैं, यह बातें चाहे उन्हें न मालूम हों। लेकिन हजारों ऐसी बातें हैं जिनका ज्ञान उन्हें हमसे और तुमसे ज्यादा है। दैव न करे, आज मैं बीमार हो जाऊँ तो तुम्हारे हाथ-पांव फूल जायेंगे। दादा को तार देने के सिवा तुम्हें और कुछ नहीं सूझेगा, लेकिन तुम्हारी जगह दादा हों, तो किसी को तार न दें, न घबरायें

न बदहवास हो। पहले खुद मरज पहचानकर इलाज करेंगे,उसमे सफल न हुए तो किसी डाक्टर को बुलावेंगे। बीमारी तो दैर बड़ी चीज है। हम तुम तो इतना भी नहीं जानते कि महीने भर का खर्च महीना भर कैसे चले। जो कुछ दादा भेजते है,उसे हम बीस बाईस तक खर्च कर डालते हैं, और फिर पैसे पैसे को मुहताज हो जाते हैं। नाश्ता बन्द हो जाता है, धोबी और नाई से मुंह चुराने लगते हैं, लेकिन जितना हम और तुम आज खर्च कर रहे हैं, उसके आधे मे दादा ने अपनी उम्र का बड़ा भाग इज्जत और नेकनामी के साथ निभाया है और एक कुटुम्ब का पालन किया है, जिसमें सब मिलकर नौ आदमी थे। अपने हेड मास्टर साहब ही को देखो। एम० ए० हैं कि नहीं, और यहाँ के एम० ए० नहीं आक्सफोर्ड के। एक हजार रुपये पाते हैं, लेकिन उनके घर का इन्तजाम कौन करता है। उनकी बूढ़ी माँ। हेड मास्टर साहब की डिग्री यहाँ बेकार हो गई। पहले खुद घर का इन्तजाम करते थे। खर्च पूरा न पड़ता था। कर्जदार रहते थे। जबसे उनकी माताजी ने प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया है, जैसे घर मे लक्ष्मी आ गई है। तो भाईजान यह गरूर दिल से निकाल डालो कि तुम मेरे समीप आ गए हो और अब स्वतन्त्र हो। मेरे देखते तुम बेराह न चलने पाओगे। अगर तुम यों न मानोगे तो मैं (थप्पड़ दिखाकर) इसका प्रयोग भी कर सकता हूं। मैं जानता हूं, तुम्हें मेरी बातें जहर लग रही हैं।'

मैं उनकी इस नई युक्ति से नतमस्तक हो गया। मुझे आज सचमुच अपनी लघुता का अनुभव हुआ और भाई साहब के प्रति मेरे मन में श्रद्धा उत्पन्न हुई। मैंने सजल आँखो से कहा—हरगिज नहीं। आप जो कुछ फरमा रहे हैं वह बिलकुल सच है और आपको उसके कहने का अधिकार है।

भाई साहब ने मुझे गले लगा लिया और बोले—मैं कनकौए उड़ाने को मना नहीं करता। मेरा जी भी ललचाता है, लेकिन क्या करूं, खुद

बेराह चलूँ, तो तुम्हारी रक्षा कैसे करूँ यह कर्तव्य भी तो मेरे सिर है।

संयोग से उसी वक्त एक कटा हुआ कनकौआ हमारे ऊपर से गुजरा। उसकी डोर लटक रही थी। लड़कों का एक गोल पीछे पीछे दौड़ा चला आता था। भाई साहब लम्बे हैं ही। उछल कर उसकी डोर पकड़ ली और बेतहाशा होस्टल की तरफ दौड़े। मैं पीछे पीछे दौड़ रहा था।

—

श्री जैनेन्द्रकुमार

४. एक गौ

हिसार और उसके आसपास के हिस्से को हरियाना कहते हैं। वहाँ के लोग खूब तगड़े होते हैं, गाय बैल और भी तन्दुरुस्त और कद्दावर होते हैं। वहाँ की नस्ल मशहूर है।

उसी हरियाने के एक गाँव में एक जमींदार रहता था। दो पुश्त पहले उसके घराने की अच्छी हालत थी। घी-दूध था, बाल बच्चे थे, मान प्रतिष्ठा थी। पर धीरे धीरे अवस्था बिगड़ती गई। आज हीरासिंह को यह समझ नहीं आता है कि अपनी बीबी दो बच्चे, खुद और अपनी सुन्दरिया गाय की परवरिश कैसे करे।

राज की अमलदारी बदल गई है, और लोगों की निगाहें भी फिर गई हैं। शहर बड़े में और बड़े हो गए हैं और वहाँ ऐसी ऊँची ऊँची हवेलियाँ खड़ी होती जाती हैं कि उनकी ओर देखा भी नहीं जाता है। कल कारखाने और पुतलीघर खड़े हो गये हैं। बाईसिकलें और मोटरें आ गई हैं। इनसे जिन्दगी तेज पड़ गई है और बाजार में महगाई आ गई है। इधर गाँव उजाड़ हो गए हैं और खुशहाली की जगह बेचारगी फैल रही है। हरियाने के बैल खूबसूरत तो अब भी मालूम होते हैं, और उन्हें देख कर खुशी भी होती है, लेकिन अब उनकी इतनी माँग नहीं है। चुनांचे हीरासिंह भी अपने बाप दादों के समान जरूरी आदमी अब नहीं रह गया है। हीरासिंह को बहुत सी बातें बहुत कम समझ में आती हैं। वह आँख फाड़ कर देखना चाहता है कि यह क्या बात है कि उसके घराने का महत्व इतना कम रह गया है। अन्त में उसने सोचा कि यह भाग्य है, नहीं तो और क्या ?

उसकी सुन्दरिया गाय डीलडौल में इतनी बडी और इतनी तन्दुरुस्त थी कि लोगों को ईर्ष्या होती थी। उसी सुन्दरिया को अब हीरासिंह ठीक ठीक खाना नहीं जुटा पाता था। इस गाय पर उसे गर्व था। बहुत ही मुहब्बत से उसे उसने पाला था। नन्ही बछिया थी, तब से वह हीरासिंह के यहां थी। हीरासिंह को अपनी गरीबी का अपने लिए इतना दुःख नहीं था, जितना उस गाय के लिए। जब उसके भी खाने-पीने में तोड़ आने लगी तो हीरासिंह के मन को बडी व्यथा हुई। क्या वह उसको बेच दे? इसी गांव के पटवारी ने दो सौ रुपय उस गाय के लगा दिए थे। दो सौ रुपये थोड़े नहीं होते। लेकिन अव्वल तो सुन्दरिया को बेचे कैसे? इसमें उसकी आत्मा दुखती थी। फिर इसी गांव में रह कर सुन्दरिया दूसरे के यहां बँधी रहे और हीरासिंह अपने बाप दादों के घर में बैठा टुकुर टुकुर देखा करे, यह हीरासिंह से कैसे सहा जायगा।

उसका बडा लड़का जवाहरसिंह बड़ा तगडा जवान था। उन्नीस वर्ष की उम्र थी, मसें भीगी थी, पर इस उमर में वह अपने से ड्योढे को कुछ नहीं समझता था। सुन्दरिया गाय को वह मौसी कहा करता था। उसे मानता भी उतना था। हीरासिंह के मन में दुर्दिन देखकर कभी गाय को बेचने की बात उठती थी तो जवाहरसिंह के डर से रह जाता था। ऐसा हुआ तो जवाहर डंडा उठाकर रार मोल लेकर उसको फिर वहां से खोलकर नहीं ले जायगा, इसका भरोसा हीरासिंह को नहीं था। जवाहरसिंह उजड्ड ही तो है। सुन्दरिया के मामले में भला वह किसी की सुनने वाला है? ऐसे नाहक रार के बोझ बढ़ जायगे और क्या?

पर दुर्भाग्य भी सिर पर से टलता न था। पैसे पैसे को तंगी होने लगी थी। और तो सब भुगत लिया जाय पर अपने आश्रित जनों की भूख कैसे भुगती जाय?

एक दिन जवाहरसिंह को बुलाकर कहा—"मैं दिल्ली जाता हूं। वहां बड़ी बड़ी कोठियां हैं, बड़े बड़े लोग हैं। हमारे गांव के कितने ही

आदमी वहा हैं। सो कोई नौकरी मिल ही जायगी। नहीं तो तुम्ही सोचो, ऐसे कैसे काम चलेगा। इतने तुम यहा देखभाल रखना। वहा ठीक होने पर तुम सबको भी बुला लूंगा।'

दिल्ली जाकर एक सेठ के यहां चौकीदार की नौकरी उसे मिल गई। हवेली के बाहर ड्योढी म एक कोठरी रहने को भी मिल गई।

एक रोज सेठ ने हीरासिंह से कहा—'तुम तो हरियाने की तरफ के रहने वाले हो ना। वहां की गाय बडी अच्छी होती है। हम दूध की तक्लीफ है, उधर की एक अच्छी गाय का बन्दोबस्त हमारे लिए करदो।

हीरासिंह ने पूछा—'कितने दूध की और कितनी कीमत की चाहिए ?'

सेठ ने कहा—कीमत जो मुनासिब हो देंगे, पर दूध थन के नीचे खूब होना चाहिए गाय खूब सुन्दर तगडी होनी चाहिए।

हीरासिंह सुन्दरिया की बात सोचने लगा। उसने कहा—"एक है तो मेरी निगाह म, पर उसका मालिक बेचे तब है।"

सेठ ने कहा—'कैसी गाय है ?

हीरासिंह ने कहा— गौ तो ऐसी है कि माँ के समान है और दूध देने म कामधेनु। पन्द्रह सेर दूध उसके तले उतरता है।"

सेठ ने पूछा— 'तो उसका मालिक किसी शर्त पर नहीं बेच सकता?"

हीरासिंह उसने दो सौ रुपया लग गए हैं।"

सेठ— दो सौ! चलो, पाच हम और ज्यादा देंगे।

पाँच रुपए और ज्यादा की बात सुनकर हीरा को दुख हुआ। वह कुछ शर्म से और कुछ ताने मे मुस्कराया भी।

सेठ ने कहा—"ऐसी भी क्या बात है! दो चार रुपए और बढती दे देंगे। बस ?"

हीरासिंह ने कहा—"अच्छी बात है। मैं कहूंगा।"

हीरासिंह को इस घड़ी दुःख बहुत हो रहा था। एक तो इसलिए कि वह जानता था कि गाय बेचने के लिए वह राजी होता जा रहा है। दूसरे दुःख इसलिए भी हुआ कि उसने सेठ से सच्ची बात नहीं कही।

सेठ ने कहा—"देखो, गाय अच्छी है और उसके तने पन्द्रह सेर दूध पक्का है, तो पांच दस रुपए के पीछे बात कच्ची मत करना।"

हीरासिंह ने तब लज्जा से कहा—"जी, सच्ची बात यह है कि गाय वह अपनी ही है।"

सेठजी ने खुश होकर कहा—"तब तो फिर ठीक बात है। तुम तो अपने आदमी ठहरे। तुम्हारे लिए जैसे दो वैसे ही पांच। गाय कब ले आओगे? मेरी राय में आज ही चले जाओ।"

हीरासिंह शरम के मारे कुछ बोल नहीं सका। उसने सोचा था कि गौ आखिर बेचनी तो होगी ही। अच्छा है कि वह गांव से दूर कहीं इसी जगह रहे। रुपए पांच कम, पांच ज्यादा—यह कोई ऐसी बात नहीं। पर गांव के पटवारी के यहां तो सुन्दरिया उससे दी न जायगी। उसने सेठ के जवाब में कहा—"जो हुक्म। मैं आज ही चला जाता हूं लेकिन एक बात है—मेरा लड़का जवाहर राजी हो जाय तब है। वह लड़का बड़ा भक्कड़ है और गाय को प्यार भी बहुत करता है।"

सेठ ने समझा यह कुछ और पैसे लेने का बहाना है। बोला "अच्छा दो सौ पांच ले लेना। चलो दो सौ सात सही। पर गाय लाओ तो। दूध पन्द्रह सेर पक्के की शरत है।"

हीरासिंह लाज से गड़ा जाने लगा। वह कैसे बताए कि रुपए की बात बिलकुल नहीं है। तिस पर ये सेठ तो उसके अन्नदाता हैं। फिर ये ऐसी बातें क्यों करते हैं? उसे जवाहर की तरफ से सचमुच शंका थी। लेकिन इन गरीबों के दिनों में गाय दिन पर दिन एक समस्या होती जाती थी। उसको रखना भारी पड़ रहा था। पर अपने तन को क्या काटा जाता है? काटते कितनी वेदना होती है। यही हीरासिंह का हाल था। सुन्दरिया

क्या केवल एक गौ थी। वह तो गौ 'माता' थी—उनके परिवार का अङ्ग थी। उसी को रुपए के मोल बेचना आसान काम न था। पर हीरासिंह को यह ढाढ़स था कि सेठ के यहां रहकर गौ उसके आंखों के आगे तो रहेगी। सेवा-टहल भी यहां वह गौ की कर लिया करेगा। उसकी टहल करके यहां उसके चित्त को कुछ तो सुख रहेगा। तब उसने सेठ से कहा—"रुपए की बात बिलकुल नहीं है सेठजी। वह लड़का जवाहर ऐसा ही है। पूरा बेबस जीव है। खैर, आप कहें, तो आज मैं जाता हूँ। उसे समझा बुझा सका, तो गौ को लेता ही आऊंगा। उसका नाम हमने सुन्दरिया रखा है।"

"हां, लेते आना। पर पन्द्रह सेर की बात है न? इत्मीनान हो जाय, तब सौदा पक्का रहेगा। कुछ रुपए चाहिए तो ले जाओ।"

हीरासिंह बहुत ही लज्जित हुआ। उसकी गौ के बारे में बेएतबारी उसे अच्छी नहीं लगती थी। उसने कहा—"जी, रुपए कहां जाते हैं फिर मिल जायगे। पर यह कह देता हूँ कि गाय वह एक ही है। मुकाबले की दूसरी मिल जाय तो मुझे जो चाहो कहना।"

सेठजी ने स्नेह-भाव से सौ रुपए मगाकर उसी वक्त हीरासिंह को थमा दिए और कहा—'देखो हीरासिंह, आज ही चले जाओ, और गाय कब तक आ जायगी? परसों तक?"

हीरासिंह ने कहा—"यहां से पचास कोस गांव है। तीन रोज तो आनेजाने में लग जायेंगे।"

सेठजी ने कहा—"पचास कोस? तीस कोस की मंजिल एक दिन में की जाती है। तुम मुझको क्या समझते हो?"

तीस कोस की मंजिल सेठ पैदल एक दिन छोड़ तीन दिन में भी कर ले तो हीरासिंह जाने। लेकिन वह कुछ बोला नहीं।

सेठ ने कहा—'अच्छा, तो चौथे दिन गाय यहां आ जाय।"

हीरासिंह ने कहा—"जी कम-से-कम पूरे पांच रोज तो लगेंगे ही।"

सेठजी ने कहा—' पांच ?

हीरासिंह ने विनीत भाव से कहा— दूर जगह है सेठजी।'

सेठजी ने कहा—' अच्छी बात है। पर देर मत लगाना यहां काम का हर्ज होगा, जानते हो ? खैर, इन दिनों तुम्हारी तनख्वाह न काटने को कह देंगे।"

हीरासिंह ने जवाब में कुछ भी नहीं कहा और वह उसी रोज चला भी गया।

ज्यों त्यों जवाहरसिंह को समझा बुझाकर गाय ले आया। देखकर सेठ बड़े खुश हुए। सचमुच वैसी सुन्दर स्वस्थ्य गौ उन्होंने अब तक न देखी थी। हीरासिंह ने खुद उसे सानी-पानी किया, सहलाया और अपने ही हाथों उसे दूहा। दूध पन्द्रह सेर से कुछ ऊपर ही बैठा। सेठजी ने खुशी में दो सौ के ऊपर सात रुपए और हीरा को दे दिए और अपने घोसी को बुलाकर गौ उसके सुपुर्द की।

रुपए तो लिये, लेकिन हीरासिंह का जी भरा आ रहा था। जब सेठजी का घोसी गाय को ले जाने लगा, तब गाय उसके साथ चलना ही नहीं चाहती थी। घोसी ने झल्लाकर उसे मारने को रस्सी भी उठाई, लेकिन सेठजी ने मना कर दिया। वह गौ इतनी भोली मालूम पड़ती थी कि सचमुच घोसी का हाथ भी उसे मारने की हिम्मत से ही उठ सका था। अब जब वह हाथ इस भांति उठ करके भी रुका रह गया तब घोसी को भी खुशी हुई क्योंकि गौ की आंखों के कोये में गाढ़े-गाढ़े आसू भर रहे थे। वे आंसू धीमे धीमे बहने भी लगे।

हीरासिंह ने कहा—"सेठजी, इस गौ की नौकरी पर मुझे कर दीजिए; चाहे तनख्वाह में दो रुपए कम कर दीजिएगा।"

सेठजी ने कहा—"हीरासिंह, तुम्हारे जैसा ईमानदार चौकीदार हमें दूसरा कौन मिलेगा ? तनख्वाह तो हम तुम्हारी एक रुपया और भी बढ़ा सकते हैं, पर तुमको ड्योढ़ी पर ही रहना होगा।"

उस समय हीरासिंह को बहुत दुःख हुआ। वह दुःख इस बात से और दुःसह हो गया कि सेठ का विश्वास उस पर है। वह गौ को सम्बोधन करके बोला 'जाओ, बहिनी ! जाओ।'

गौ ने सुनकर मुंह ऊपर जरा उठाकर हीरासिंह की तरफ देखा, मानो पूछती हो, जाऊं ? तुम कहते हो, जाऊं ?

हीरासिंह उसके पास आ गया। उसने गले पर थपथपाया, माथे पर हाथ फेरा, गलबन्ध सहलाया और कांपती वाणी में कहा—"जाओ बहिनी सुन्दरिया, जाओ। मैं कहीं दूर थोड़े ही हूँ, मैं तो यहीं हूँ।

हीरासिंह के आशीर्वाद में भीगती हुई गौ चुप खड़ी थी। जाने की बात पर फिर जरा मुँह ऊपर उठाया और भरी आंखों से उसे देखती हुई मानो पूछने लगी— 'जाऊं ? तुम कहते हो, जाऊं ?"

हीरासिंह ने थपथपाते हुए पुचकार कर कहा—"जाओ बहिनी ! सोच न करो।" फिर घोसी को आश्वासन देकर कहा—"लो, अब ले जाओ, अब चली जायगी।" यह कहकर हीरासिंह ने गाय के गले की रस्सी अपने हाथों उस घोसी को थमा दी।

गाय फिर चुपचाप डग डग घोसी के पीछे पीछे चली गई। हीरासिंह एकटक देखता रहा। उसने आँसू नहीं दिए। हाथ के नोटों को उसने जोर से पकड़ रखा। नोटों पर वह मुट्ठी इतनी जोर से कस गई कि अगर उन नोटों में जान होती तो बेचारे रो उठते। वे कुचले मुचलाए मुट्ठी में बंधे रह गए।

उसके बाद सेठजी वहां से चले गए और हीरासिंह भी चलकर अपनी कोठरी में आ गया। कुछ देर वह उस हवेली की ड्योढ़ी के बाहर शून्य भाव से देखता रहा। भीतर हवेली थी, बाहर विस्तृत शहर था, जिसके पार मैदान और खुली हवा थी और उनके बीच में आने जाने का रास्ता ...। फिर भी उस रास्ते को रोके हुए वह ड्योढ़ी थी। कुछ देर तो

वह देखता रहा, फिर मुँह झुकाकर हुक्का गुड़गुड़ाने लगा। अनबूझ भाव में वह इस व्याप्त विस्तृत शून्य में देखता रहा।

लेकिन अगले दिन गड़बड़ उपस्थित हुई। सेठजी ने हीरासिंह को बुलाकर कहा—'यह तुम मुझे धोखा तो नहीं देना चाहते? गाय के नीचे से सवेरे पांच सेर भी तो दूध नहीं उतरा। शाम को भी यही हाल रहा है। मेरी आँख में तुम धूल झोंकना चाहते हो।"

हीरासिंह ने बड़ी कठिनाई से कहा—"मैंने तो पन्द्रह सेर से ऊपर दुहकर आपके सामने दे दिया था।"

"दे दिया होगा। लेकिन अब क्या बात हो गई? जो तुमने उसे कोई दवा खिला दी है?"

हीरासिंह का जी दुःख और ग्लानि में कठिन हो आया। उसने कहा "दवा मैंने नहीं खिलाई और कोई दवा दूध ज्यादा नहीं निकलवा सकती। इसके आगे मैं और कुछ नहीं जानता।"

सेठजी ने कहा—"तो जाकर अपनी गाय को देखो। अगर दूध नहीं देती, तो बता मुझे मुफ्त का जुर्माना भुगतना है?"

हीरासिंह गाय के पास गया। वह उसे गर्दन से लगाकर खड़ा हो गया। उसने गाय को चूमा, फिर कहा—"सुन्दरिया, तू मेरी रुसवाई क्यों करानी है? तेरे बारे में किसी से धोखा करूँगा।"

गाय ने उसी भाँति मुँह ऊपर उठाया, मानो पूछा—'मुझे कहते हो? बोलो, मुझे क्या कहते हो?'

हीरासिंह ने घोसी से कहा—"बटा लाओ तो!"

घोसी ने कहा—"मैं, आध घंटा पहले तो दूह चुका हूँ।"

हीरासिंह ने कहा—"तुम बटा लाओ।"

उसके बाद साढ़े तेरह सेर दूध उसके तले से पक्का तौलकर हीरासिंह ने घोसी को दे दिया। कहा—"यह दूध सेठजी को देना। फिर गौ के गले

पर अपना सिर डालकर हीरासिंह बोला—"सुन्दरिया ! देख, मेरी ओछी मत कर। तू यहाँ है, मैं दूर हूँ, तो क्या उसमें मुझे सुख है ?"

गौ मुँह झुकाये वैसे ही खड़ी रही।

"देखना सुन्दरिया ! मेरी रुसवाई न करना।" गद्गद् कण्ठ से यह कहकर उसे थपथपाते हुए हीरासिंह चला गया।

पर गौ अपनी विथा किसे कहे ? वह नहीं पाती, इसी से सही नहीं जाती। क्या वह हीरासिंह की रुसवाई चाहती है ? उसे सह सकती है ? लेकिन दूध नीचे आता ही नहीं, तब क्या करे ? वह तो चढ़-चढ़ जाता है, सूख सूख जाता है, गौ बेचारी करे तो क्या ?

तो फिर शिकायत हो चली। आए दिन बखेड़े होने लगे। शाम इतना दूध दिया, सवेरे उसमें भी कम दिया। नल तो चढ़ा ही गई थी। इतने उनहार-मनुहार किये, बस में ही नहीं आई। गाय है कि बवाल है। जी को एक साँसत हो पाल ली।

सेठजी ने कहा—"क्यों हीरासिंह यह, क्या है ?"

हीरासिंह ने कहा—"मैं क्या जानता हूँ—"

सेठजी ने कहा—"क्या यह सरासर धोका नहीं है ?"

हीरासिंह चुप रह गया।

सेठजी ने कहा—"ऐसा ही है तो ले जाओ अपनी गाय और रुपये मेरे वापिस करो।"

लेकिन रुपये हीरासिंह गाँव भेज चुका था, और उसमें से काफी रकम वहाँ के मकान की मरम्मत में काम आ चुकी थी। हीरासिंह फिर चुप रह गया।

सेठजी ने कहा—"क्या कहते हो ?"

हीरासिंह क्या कहे ?

सेठजी ने कहा—"अच्छा तनख्वाह में से रकम कटती जायगी और जब पूरी हो जायगी, तो गाय अपनी ले जाना।"

होरासिंह ने सुन लिया और सुनकर वह अपनी ड्योढ़ी में आ गया। उस ड्योढ़ी के इधर हवेली है, उधर बाहर बिछा है, जिसके पार खुला मैदान है और खुली हवा है। दोनों ओर कुछ-देर शून्य भाव से देखकर वह हुक्का गुड़गुड़ाने लगा।

अगले दिन सवेरे से ही एक प्रश्न भिन्न-भिन्न प्रकार की आलोचना-विवेचना का विषय बना हुआ था। बात यह थी कि सवेरे बहुत सा दूध ड्योढ़ी पर बिखरा हुआ पाया गया। उससे पहली शाम को सुन्दरिया गाय ने दूध देने से बिलकुल इन्कार कर दिया था। उसे बहलाया गया, फुसलाया गया, धमकाया और पीटा भी गया था। फिर भी वह राह पर न आई थी। अब यह इतना सारा दूध यहां कैसे बिखरा है? यह यहां आया तो कहां से आया?

लोगों का अनुमान था कि कोई दूध लेकर ड्योढ़ी में आया था, वह ड्योढ़ी में जा रहा था, तभी उसके हाथ से यह बिखर गया है। अब वह दूध लेकर आनेवाला आदमी कौन हो सकता है? लोगों का अनुमान यह था कि होरासिंह वह व्यक्ति हो सकता है। होरासिंह चुप था। वह लज्जित और सचमुच अभियुक्त मालूम होता था। होरासिंह के दोषी होने का अनुमान का कारण यह भी था कि हवेली के और नौकर उससे प्रसन्न न थे। वह नौकर के ढंग का नौकर ही न था। नौकरी से आगे बढ़कर स्वामि-भक्ति का भी उसे चाव था जो कि नौकर के लिए असह्य दुर्गुण नहीं तो और क्या है?

सेठजी ने पूछा—"होरासिंह क्या बात है?"

होरासिंह चुप रह गया।

सेठजी ने कहा—"इसका पता लगाओ, होरासिंह नहीं तो अच्छा न होगा।"

हीरासिंह सिर झुकाकर रह गया। पर कुछ ही देर मे उसने सहसा चमत्कृत होकर पूछा—"रात गाय खुली तो नही रह गई थी ? जरूर यही बात है। आप इसकी खबर तो लीजिए।"

घोसी को बुलाकर पूछा गया तो उसने कहा कि ऐसी चूक कभी उससे जनम-जोते जो हो सकती हो नही है, और कल रात तो हुजूर, पक्के दावे के साथ गाय ठीक तरह से बँधी रही है।

हीरासिंह ने कहा—"ऐसा हो नही सकता -"

सेठजी ने कहा—"तो फिर तुम्हारी समझ मे क्या हो सकता है।"

हीरासिंह ने स्थिर होकर कहा—"गाय रात को आकर ड्योढ़ी मे खड़ी रही है और अपना दूध गिरा गई है।"

यह कहकर हीरासिंह इतना लीन हो रहा था कि मानो गौ के इस दुष्कृत पर अतिशय कृतज्ञता मे डूब गया हो।

सेठजी ऐसी अनहोनी बात पर कुछ देर भी न ठहरे। उन्होने कहा—"ऐसी मनसुई बाते औरो से कहना। जाओ, खबर लगाओ कि वह कौन आदमी है, जिसकी यह करतूत है।"

हीरासिंह ड्योढ़ी पर चला गया। ड्योढ़ी इस हवेली और उस दुनिया के दरमियान है और उसके लिए घर बनी हुई है। और क्षणेक फिर शून्य मे देखते रहकर सिर झुकाकर वह हुक्का गुड़गुड़ाने लगा।

रात को जब वह सो रहा था, उसे मालूम हुआ कि दरवाजे पर कुछ रगड़ की आवाज आई। उठकर दरवाजा खोला कि देखता क्या है सुन्दरिया खड़ी है। इस गौ के भीतर इन दिनो बहुत थिया घुटकर रह गई थी। वह तकलीफ बाहर आना ही चाहती थी। हीरासिंह ने देखा—मुँह उठा कर उसकी सुन्दरिया उसे अनियुक्ता की आँखो से देख रही है। मानो अत्यन्त लज्जित बनी क्षमा-याचना कर रही हो, कहती हो—"मै अपराधिनी हूँ। लेकिन मुझे क्षमा कर देना। मैं बड़ी दुखिया हूँ!"

"हीरासिंह ने कहा—"बहिनी, यह तुमने क्या किया ?"

कैसा आश्चर्य ! देखता क्या है कि गौ मानव वाणी में बोल रही है—'मैं क्या करूँ ?'

हीरासिंह ने कहा—"बहन, तुम बेवफाई क्यों करती हो ? सेठ को अपना दूध क्यों नहीं देती हो ? बहिनी ! अब वह तुम्हारे मालिक हैं।" कहते कहते हीरासिंह की वाणी काँप गई, मानो कहीं भीतर इस मालिक होने की बात के सच होने में उसे खुद शंका हो।

सुन्दरिया ने पूछा—"मालिक ! मालिक क्या होता है ?"

हीरासिंह ने कहा—"तुम्हारी कीमत के रुपये सेठ ने मुझे दिये थे। ऐसे वह तुम्हारे मालिक हुए।"

गौ ने कहा—"ऐसे तुम्हारे यहाँ मालिक हुआ करते हैं। मैं इस बात को जानती नहीं हूँ। लेकिन तुम मुझे प्रेम करते हो, सो तुम मेरे क्या हो ?"

हीरासिंह ने धीरज भाव से कहा—"मैं तुम्हारा कुछ भी नहीं हूँ।"

गौ बोली—"तुम मेरे कुछ भी नहीं हो, यह तुम कहते हो ? तुम झूठ भी नहीं कहते होगे। तुम जो जानते हो, वह मैं नहीं जानती। लेकिन मालिक की बात के साथ दूध देने की बात मुझमें तुम कैसी करते हो ? मालिक हैं, तो मैं उनके घर में उनके खूँटे से बँधी रहती तो हूँ ! रात में भी चोरी करके आई हूँ। तो भी उनकी ड्योढ़ी से बाहर नहीं हूँ। पर दूध तो मेरे उतरता ही नहीं, उसका क्या करूँ ? मेरे भीतर का दूध मेरे पूरी तरह बस में नहीं है। कल रात आप ही आप इतना सारा दूध यहाँ बिखर गया। मैं यह सोचकर नहीं आई थी। हाँ मुझे लगता है कि बिखरेगा तो वह यों ही बिखर जायगा। तुम ड्योढ़ी में रहोगे तो शायद ड्योढ़ी में बिखर जायगा। ड्योढ़ी से पार चले जाओगे तो शायद भीतर ही भीतर सूख जायगा। मैं जानती हूँ, इससे तुम्हें दुख पहुँचा है। शायद

यह ठीक बात नहीं हो। मेरा यहाँ तक था जाना भी ठीक बात नहीं हो। लेकिन जितना मेरा बस है, मैं कह चुकी हूँ। तुमने रुपये दिये है, और सेठ मेरे मालिक हैं, तो उनके घर मे उनके खूँटे मे मैं रह लूँगी। रह तो मैं रही हूँ ही, पर उससे आगे मेरा बस कितना है, तुम्ही सोच लो। मैं गौ हूँ, रुपये के लेन देन मे अधिकार का और प्रेम के लेनदेन जिस भाव से तुम्हारी दुनियाँ मे होना है उसे मै नही जानती। फिर भी तुम्हारी दुनियाँ मे तुम्हारे नियम मानती जाऊँगी। लेकिन, तुम मुझे अपने हृदय का इतना स्नेह देते हो, तब तुम मेरे कुछ भी नहीं हो और मैं अपने हृदय का दूध बिलकुल तुम्हारे प्रति नहीं बहा सकती—यह बात मैं किसविध मान लूँ ? मुझसे नहीं मानी जाती, सच, नहीं मानी जाती। फिर भी जो तुम कहोगे वह मैं सब कुछ मानूँगी।"

हीरासिंह ने विषाद भरे स्वर में पूछा—"तो मैं तुम्हारा क्या हूँ।"

गौ ने कहा— "सो क्या मेरे कहने की बात है ? फिर शब्द मैं विशेष नही जानती। दुख है, वही मेरे पास है। उससे जो शब्द बन सकते हैं, उन्ही तक मेरी पहुँच है। आगे शब्दो मे मेरी गति नहीं है। जो भाव मन मे हैं उसके लिए सज्ञा मेरे जुटाये जुटती नहीं। पशु जो मैं हूँ। सज्ञा तुम्हारे समाज की स्वीकृति के लिए जरूरी होनी होगी, लेकिन मै तुम्हारे समाज की नहो हूँ। मै निरी गौ हूँ। तब मैं कह सकती हूँ कि तुम मेरे कोई हो कोई न हो, दूध मेरा किसी के प्रति नहीं रुकेगा। इसमें मैं या तुम या कोई शायद कुछ भी न कर सकेंगे। इस बात मे मुझ पर मेरा भी बस कैसे चलेगा ? तुम जानते तो हो मैं कितनी परबस हूँ।"

हीरासिंह गौ के कण्ठ से लिपटकर सुबकने लगा। बोला—"सुन्दरिया तो मैं क्या करूँ ?"

गौ ने कम्पित वाणी मे कहा—"मैं क्या कहूँ ? मैं क्या कहूँ ?"

हीरासिंह ने कहा—"जो कहो, मैं वही करूँगा सुन्दरिया ! रुपये का लेन-देन है, लेकिन, मेरी गौ, मैंने जान लिया कि उससे आगे भी कुछ है।

शायद उससे आगे ही सब कुछ है। जो कहो वही करूँगा मेरी सुन्दरिया।"

गौ ने कहा—"जो तुमसे सुन रही हूँ उसके आगे मेरी कुछ चाहना नही है। इतने में ही मेरी सारी कामनाएँ भर गई हैं। आगे तो तुम्हारी इच्छा है और मेरा तन है। मेरा विश्वास करो, मैं कुछ नही माँगती और मैं सब सह लूँगी।"

सुनकर हीरासिंह बहुत ही विह्वल हो आया। उसके आँसू रोके न रुके। वह गौ की गर्दन से लिपट कर तरह तरह के प्रेम सम्बोधन करने लगा। उसके बाद हीरासिंह ने बहुत से आश्वासन के वचनों के साथ गौ को विदा किया।

अगले सवेरे उसने सेठजी से कहा कि आप मुझ से जितने महीने की चाहे कसकर चाकरी लीजिए, पर गौ आज ही यहाँ से हमारे गाव चली जायगी। रुपये जब आपके चुकता हो जायें, मुझ से कह दीजिएगा। तब मैं भी छुट्टी ले जाऊँगा। 34632

सेठजी की पहले तो राजी होने की तबियत न हुई, फिर उन्होने कहा—'हाँ ले जाओ, ले जाओ। पर पूरा ढाई सौ रुपये का तावान तुम्हे भरना पडेगा।"

हीरासिंह तावान भरने को खुशी से राजी हुआ और गौ को उसी रोज ले गया।

श्री अज्ञेय

५. शत्रु

ज्ञान को एक रात सोते समय भगवान् ने स्वप्न में दर्शन दिये, और कहा—"ज्ञान, मैंने तुम्हें अपना प्रतिनिधि बनाकर संसार में भेजा है। उठो, संसार का पुनर्निर्माण करो।"

ज्ञान जाग पड़ा। उसने देखा, संसार अंधकार में पड़ा है, और मानव-जाति उस अंधकार में पथ भ्रष्ट होकर विनाश की ओर बढ़ती चली जा रही है। वह ईश्वर का प्रतिनिधि है, तो उसे मानव-जाति को पथ पर लाना होगा, अन्धकार से बाहर खींचना होगा, उसका नेता बनकर उसके शत्रु से युद्ध करना होगा।

और वह जाकर चौराहे पर खड़ा हो गया और सबको सुनाकर कहने लगा—"मैं मसीह हूँ, पैगम्बर, हूँ भगवान् का प्रतिनिधि हूँ। मेरे पास तुम्हारे उद्धार के लिए एक सन्देश है।"

लेकिन किसी ने उसकी बात नहीं सुनी। कुछ उसकी ओर देखकर हँस पड़ते, कुछ कहते पागल है, अधिकांश कहते, यह हमारे धर्म के विरुद्ध शिक्षा देता है, नास्तिक है, इसे मारो। और बच्चे उसे पत्थर मारा करते।

× × ×

आखिर तङ्ग आकर वह एक अन्धेरी गली में छिपकर बैठ गया और सोचने लगा। उसने निश्चय किया कि मानवजाति का सबसे बड़ा शत्रु है धर्म, उसी से लड़ना होगा।

तभी पास कहीं से उसने स्त्रीके करुण क्रन्दन की आवाज सुनी। उसने देखा, एक स्त्री भूमि पर लेटी है उसके पास एक बहुत छोटा-सा बच्चा पड़ा है, जो या तो बेहोश है या मर चुका है क्योंकि उसके शरीर में किसी प्रकार की गति नहीं है।

ज्ञान ने पूछा—"बहिन, क्यों रोती हो ?

उस स्त्री ने कहा—' मैंने एक विधर्मीसे विवाह किया था। जब लोगों को इसका पता चला तब उन्होंने उसे मार डाला और मुझे निकाल दिया। मेरा बच्चा भी भूख से मर रहा है।

ज्ञान का निश्चय और भी दृढ़ हो गया। उसने कहा—"तुम मेरे साथ आओ मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा।" और उसे अपने साथ ले गया।

ज्ञान ने धर्म के विरुद्ध प्रचार करना शुरू किया। उसने कहा—"धर्म झूठा बन्धन है। परमात्मा एक है, अबाध है और धर्म से परे है। धर्म हमें सीमा में रखता है, रोकता है परमात्मा से अलग रखता है, अतः हमारा शत्रु है।"

लेकिन किसी ने कहा—जो व्यक्ति पराई और बहिष्कृता औरत को अपने साथ रखता है उसकी बात हम क्यों सुनें ? वह समाज से पतित है, नीच है।'

तब लोगों ने उसे समाजच्युत करके बाहर निकाल दिया।

× × ×

ज्ञान ने देखा कि धर्म से लड़ने से पहले समाज से लड़ना है। जब तक समाज पर विजय नहीं मिलती, तब तक धर्म का खण्डन नहीं हो सकता।

तब वह इसी प्रकार का प्रचार करने लगा। वह कहने लगा—"ये धर्मध्वजी, ये पापी पुरोहित, मुल्ला ये कौन हैं ? इन्हें क्या अधिकार है हमारे जीवन को बांध रखने का ? आओ, हम इन्हें दूर कर दें, एक स्वतन्त्र समाज की रचना करें, ताकि हम उन्नति के पथ पर बढ़ सकें।

तब एक दिन विदेशी सरकार के दो सिपाही आकर उसे पकड़ ले गये क्योंकि वह वर्णों में परस्पर विरोध जगा रहा था।

× × ×

ज्ञान जब जेल काटकर बाहर निकला, तब उसकी छाती में इन विदेशियों के प्रति विद्रोह धधक रहा था। यही तो हमारी क्षुद्रताओं को स्थायी बनाये रखते हैं, और उससे लाभ उठाते हैं। पहले अपने को विदेशी प्रभुत्व से मुक्त करना होगा, तब समाज को तोड़ना होगा, तब ...

और वह गुप्त रूप से विदेशियों के विरुद्ध लड़ाई का आयोजन करने लगा।

एक दिन उसके पास एक विदेशी आदमी आया। वह मैले कुचैले, फटे-पुराने, खाकी कपड़े पहने हुए था। मुख पर झुर्रियां पड़ी थी, आंखों में एक तीखा दर्द था। उसने ज्ञान से कहा—"आप मुझे कुछ काम दें ताकि मैं अपनी रोजी कमा सकूं। मैं विदेशी हूं, आपके देश भूखा मर रहा हूं। कोई भी काम आप मुझे दें, मैं करूंगा। आप परीक्षा लें। मेरे पास रोटी का टुकड़ा भी नहीं है।"

ज्ञान ने खिन्न होकर कहा—"मेरी दशा तुमसे कुछ अच्छी नहीं है, मैं भी भूखा हूं।"

वह विदेशी एकाएक पिघल-सा गया। बोला—"अच्छा, मैं आपके दुःख से बहुत दुःखी हूं। मुझे अपना भाई समझें। यदि आपस में सहानुभूति हो, तो भूखे मरना मामूली बात है। परमात्मा आपकी रक्षा करें। मैं आपके लिए कुछ कर सकता हूं?"

× × ×

ज्ञान ने देखा कि देशी-विदेशी का प्रश्न तब उठता है, जब पेट भरा हो। सबसे पहला शत्रु तो वह भूख ही है। पहले भूख को जीतना होगा, तभी आगे कुछ सोचा जा सकेगा

और उसने 'भूख के लड़ाकों' का एक दल बनाना शुरू किया, जिसका उद्देश्य था, अमीरों से धन छीनकर सब में समान रूप से वितरण करना, भूखों को रोटी देना इत्यादि। लेकिन जब धनिकों को इस बात का ... चला तब उन्होंने एक दिन चुपचाप अपने अनुचरों द्वारा उसे पकड़वा मँगाया और एक पहाड़ी किले में कैद कर दिया। वहाँ एकांत में वे ... सताने के लिए नित्य एक मुट्ठी चबैना और एक लोटा पानी दे देते, बस

धीरे-धीरे ज्ञान का हृदय ग्लानि से भरने लगा। जीवन उसे बोझ सा जान पड़ने लगा। निरन्तर यह भाव उसके भीतर जागा करता कि मैं ज्ञान, परमात्मा का प्रतिनिधि, इतना विवश हूँ कि पेट-भर रोटी का प्रबन्ध मेरे लिए असम्भव है। यदि ऐसा है, तो कितना व्यर्थ है यह जीवन, कितना छूँछा, कितना बेईमान।

एक दिन वह किले की दीवार पर चढ़ गया। बाहर खाई में भरा हुआ पानी देखते-देखते उसे एकदम से विचार आया और उसने निश्चय कर लिया कि वह उसमें कूदकर प्राण खो देगा। परमात्मा के पास लौटकर प्रार्थना करेगा कि मुझे इस भार से मुक्त करो, मैं तुम्हारा प्रतिनिधि तो हूँ, लेकिन ऐसे संसार में मेरा स्थान नहीं है।

वह स्थिर, मुग्ध दृष्टि से खाई के पानी में देखने लगा। वह कूदने को ही था कि एकाएक उसने देखा, पानी में उसका प्रतिबिम्ब झलक रहा है मानो कह रहा है—"बस अपने आपसे लड़ चुके ?"

× × × ×

ज्ञान सहमकर रुक गया, फिर धीरे-धीरे दीवार पर से नीचे उतर आया और किले में चक्कर काटने लगा।

और उसने जान लिया कि जीवन की सबसे बड़ी कठिनाई यही कि हम निरन्तर आसानी की ओर आकृष्ट होते हैं।

———

श्री भगवतीचरण वर्मा

६. प्रायश्चित

अगर कबरी बिल्ली घर भर में किसी से प्रेम करती थी तो रामू की बहू थी और अगर रामू की बहू घर भर में किसी से घृणा करती थी तो कबरी बिल्ली से। रामू की बहू दो महीना हुआ, मायके से प्रथम बार ससुराल आई थी, पति की प्यारी और सास की दुलारी चौदह वर्ष की बालिका। भण्डार घर की चाबी उसकी करधनी में लटकने लगी नौकरों पर उसका हुक्म चलने लगा और रामू की बहू घर में सब कुछ। सासजी ने माला ली और पूजा-पाठ में मन लगाया।

लेकिन ठहरी चौदह वर्ष की बालिका, कभी भण्डार घर खुला है तो कभी भण्डार घर में बैठे बैठे सो गई। कबरी बिल्ली को मौका मिला, घी दूध पर, अब वह जुट गई। रामू की बहू की जान आफत में और कबरी बिल्ली के छक्के पंजे। रामू की बहू हाँडी में घी रखते रखते ऊँघ गई और बचा हुआ घी कबरी के पेट में। रामू की बहू दूध ढककर मिसरानी को जिन्स देने गई और दूध नदारत। अगर बात यहीं तक रह जाती तो भी बुरा न था, कबरी रामू की बहू से कुछ ऐसी परक गई थी कि रामू की बहू के लिये खाना पीना दुश्वार।

रामू की बहू के कमरे में रबड़ी से भरी कटोरी पहुँची और रामू जब आए तब कटोरी साफ चटी हुई। बाजार से बालाई आई और जब तक रामू की बहू ने पान लगाया, बालाई गायब। रामू की बहू ने तै कर लिया कि या तो वही घर में रहेगी या फिर कबरी बिल्ली ही। मोरचाबन्दी होगई और दोनों सतर्क। बिल्ली फँसाने का कठघरा आया, उसमें

दूध मलाई, चूहे और बिल्ली को स्वादिष्ट लगने वाले विविध प्रकार के व्यंजन रखे गये, लेकिन बिल्ली ने उधर निगाह तक न डाली। इधर कबरी ने सरगर्मी दिखाई। अभी तक वह रामू की बहू से डरती थी, पर अब वह साथ लग गई, लेकिन इतने फासले पर कि रामू की बहू उस पर हाथ न लगा सके।

कबरी के हौसले काफी बढ़ जाने से रामू की बहू को घर में रहना मुश्किल हो गया। उसे मिलती थी सास की मीठी झिड़कियां और पति देव को मिलता था रूखा-सूखा भोजन।

एक दिन रामू की बहू ने रामू के लिए खीर बनाई। पिश्ता, बादाम, मखाने और तरह-तरह के मेवे दूध में औटाए गये, सोने का वर्क चिपकाया गया और खीर से भरकर कटोरा कमरे के एक ऐसे ऊँचे ताक पर रखा गया, जहां बिल्ली न पहुँच सके। रामू की बहू इसके बाद पान लगाने में लग गई।

उधर कमरे में बिल्ली आई, ताक के नीचे खड़े होकर उसने ऊपर कटोरे की ओर देखा, सूँघा, माल अच्छा है, ताक की ऊँचाई अन्दाजी और रामू की बहू पान लगा रही है। पान लगाकर रामू की बहू सासजी को पान देने चली गई और कबरी ने छलांग मारी, पंजा कटोरे में लगा और कटोरा झनझनाहट की आवाज के साथ फर्श पर।

आवाज रामू की बहू के कान में पहुँची, सास के सामने पान फेंककर वह दौड़ी, क्या देखती है कि फूल का कटोरा टुकड़े टुकड़े, खीर फर्श पर और बिल्ली डटकर खीर उड़ा रही है। रामू की बहू को देखते ही कबरी चम्पत।

रामू की बहू पर खून सवार हो गया, न रहे बांस न बजे बांसुरी। रामू की बहू ने कबरी की हत्या पर कमर कस ली। रात भर उसे नींद न आई, किस दाव से कबरी पर वार किया जाय कि फिर जिन्दा न बचे यही पड़े-पड़े सोचती रही। सुबह हुई और वह देखती है कि कबरी देहरी पर बैठी बड़े प्रेम से उसे देख रही है।

रामू की बहू ने कुछ सोचा, इसके बाद मुस्कराती हुई वह उठी, कबरी रामू की बहू को देखते ही खिसक गई। रामू की बहू एक कटोरा दूध कमरे के दरवाजे की देहरी पर रखकर चली गई। हाथ में पाटा लेकर वह लौटी तो देखती है कि कबरी दूध में जुटी हुई है। मौका हाथ में आ गया। सारा बल लगाकर पाटा उसने बिल्ली पर पटक दिया। कबरी न हिली न डुली न चीखी न चिल्लाई, बस एकदम उलट गई।

आवाज जो हुई तो महरी झाड़ू छोड़कर, मिसरानी रसोई छोड़कर, और सास पूजा छोड़कर घटनास्थल पर उपस्थित हो गई। रामू की बहू सर झुकाए अपराधिनी की भाँति बातें सुन रही है।

महरी बोली—"अरे राम बिल्ली तो मर गई। माँ जी बिल्ली की हत्या बहू से हो गई है, यह तो बुरा हुआ।"

मिसरानी बोली—"माँ जी, बिल्ली की हत्या और आदमी की हत्या बराबर है। हम तो रसोई न बनावेंगे, जब तक बहू के सर हत्या रहेगी।"

सासजी बोलीं—"हाँ ठीक तो कहती हो, अब जब तक बहू के सर से हत्या न उतर जाय तब तक न कोई पानी पी सकता है, न खाना खा सकता है। बहू यह क्या कर डाला?"

महरी ने कहा—"फिर क्या हो, कहो तो पंडितजी को बुलाय लाऊँ।"

सास की जान में जान आई—"अरे हाँ, जल्दी दौड़कर पंडितजी को बुला ला।"

बिल्ली की हत्या की खबर बिजली की तरह पड़ोस में फैल गई। पड़ोस की औरतों का रामू के घर ताँता बँध गया। चारों तरफों से प्रश्नों की बौछार और रामू की बहू सिर झुकाये बैठी।

पंडित परमसुख को जब यह खबर मिली, उस समय वे पूजा कर रहे थे। खबर पाते ही उठ पड़े—पंडिताइन से मुस्कराते हुए बोले—"भोजन न बनाना। लाला घीसाराम की पतोहू ने बिल्ली मार डाली, प्रायश्चित होगा, पकवानों पर हाथ लगेगा।"

पडित परमसुख चौबे छोटे मे मोटे आदमी थे। लम्बाई चार फीट दस इञ्च और तोदका घेरा अट्ठावन इञ्च। चेहरा गोल मटोल मूँछ बडी-बडी, रग गोरा, चोटी कमर तक पहुँचती हुई।

कहा जाता है कि मथुरा मे जब पसेरी खुराक वाले पडितो को ढूँढा जाता था तो पडित परमसुखजी को उस लिस्ट मे प्रथम स्थान दिया जाता था।

पडित परमसुख पहुँचे, और कारम पूरा हुआ। पचायत बैठी--सासजी, मिसरानी, किसनू की माँ छन्नूकी दादी और पडित परमसुख। बाकी स्त्रियाँ बहू से सहानुभूति प्रकट कर रही थी।

किसनू की मा ने कहा--"पडितजी, बिल्ली की हत्या करने से कौन नरक मिलता है ?"

पडित परमसुख ने पत्रा देखते हुए कहा--"बिल्ली की हत्या अकेले मे तो नरक का नाम नही बतलाया जा सकता, वह महूरत भी जब मालूम हो, जब बिल्लो की हत्या हुई, तब नरकका पता लग सकता है।"

"यही कोई सात बजे सुबह"--मिसरानीजी ने कहा।

पडित परमसुख ने पन्ने के पन्ने उलटे, अक्षरो पर उँगलियाँ चलाई, माथे पर हाथ लगाया और कुछ सोचा। चेहरे पर धुँधलापन आया। माथे पर बल पड़े, नाक कुछ सिकुडी और स्वर गम्भीर हो गया, "हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण ! बडा बुरा हुआ, प्रातःकाल ब्रह्म मुहूर्त में बिल्ली की हत्या ! घोर कुम्भीपाक नरक का विधान है। रामू की माँ यह तो बडा बुरा हुआ।"

रामू की मा के आखों मे आँसू आ गए, तो फिर पडित जी अब क्या होगा, आप ही बतलाये ?"

पडित परमसुख मुस्कराये--"रामू की मा, चिन्ता की कौन सी बात है, हम पुरोहित फिर कौन दिन के लिए हैं। शास्त्रो मे प्रायश्चित का विधान है सो प्रायश्चित से सब कुछ ठीक हो जायगा।"

रामू की मा ने कहा--"पडितजी इसी लिए तो आपको बुलवाया था, अब आगे बतलाओ कि क्या किया जाय ?"

"क्या किया जाय—यही एक सोने की बिल्ली बनवाकर बहू से दान करवा दी जाय—जब तक बिल्ली न दे दी जायगी तब तक तो घर अपवित्र रहेगा, बिल्ली दान देने के बाद इक्कीस दिनका पाठ हो जाय।"

घन्नू की दादी—"हां, और क्या पंडितजी ठीक कहते हैं, बिल्ली अभी दान दे दी जाय और पाठ फिर हो जाय।"

रामू की माँ ने कहा—"तो पंडितजी, कितने तोले की बिल्ली बनवाई जाय ?"

पंडित परमसुख मुस्कराये, अपनी तोंद पर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा—"बिल्ली कितने तोले की बनवाई जाय ? अरे रामू की मा, शास्त्रों म तो लिखा है कि बिल्ली के वजन भर सोने की बिल्ली बनवाई जाय। लेकिन अब कलियुग आ गया है, धर्म-कर्म का नाश हो गया है, श्रद्धा नहीं रही। सो रामू की मा बिल्ली के तौलभर की बिल्ली तो क्या बनेगी, क्योंकि बिल्ली बीस-इक्कीस सेर से कम क्या होगी, हाँ कम से कम इक्कीस तोले की बिल्ली बनवा के दान करवा दो, और आगे तो अपनी अपनी श्रद्धा।"

रामू की मा ने आंखें फाड़ कर पंडित परमसुख को देखा—"अरे बाप रे! इक्कीस तोला सोना! पंडितजी यह तो बहुत है, तोला भर की बिल्ली से काम निकलेगा ?

पंडित परमसुख हँस पड़े—"रामू की मां! एक तोला सोने की बिल्ली! अरे रुपये का लोभ बहू से बढ़ गया? बहू के सिर पर बड़ा पाप है—इसमें इतना लोभ ठीक नहीं।"

मोल-तोल शुरू हुआ और मामला ग्यारह तोले की बिल्ली पर ठीक हो गया।

इसके बाद पूजा-पाठ की बात आई। पंडित परमसुख ने कहा—उसमें क्या मुश्किल है, हम लोग किस दिन के लिए हैं ? रामू की मा पाठ कर दिया करूँगा, पूजा की सामग्री आप हमारे घर भिजवा देना।'

"पूजा का सामान कितना लगेगा ?"

"अरे कम से कम सामान में हम पूजा कर देंगे, दान के लिए करीब दस मन गेहूँ, एक मन चावल, एक मन दाल, मन भर तिल, पांच मन जौ और पांच मन चना, चार पसेरी घी और मन मन भर नमक भी लगेगा। बस इतने से काम चल जायगा।

"अरे बाप रे! इतना सामान, पंडितजी इसमें तो सौ-डेढ़ सौ रुपया खर्च हो जायगा।"—रामू की माँ ने उदासी होकर कहा।

"फिर इससे कम में तो काम न चलेगा। बिल्ली की हत्या कितना बड़ा पाप है, रामू की माँ। खर्च का देखने वक्त पहले बहू के पाप को तो देख लो। यह तो प्रायश्चित है, कोई हँसी-खेल थोड़े ही है और जैसी जिसकी मरजादा प्रायश्चित में उसे वैसा खर्च भी करना पड़ता है। आप लोग कोई ऐसे-वैसे थोड़े है, अरे माँ डेढ़ सौ रुपया आप लोगों के हाथों का मैल है।"

पंडित परमसुख की बात से पञ्च प्रभावित हुए, किसनू की माँ ने कहा—"पंडित जी ठीक तो कहते हैं, बिल्ली की हत्या कोई ऐसा वैसा पाप तो है ही नहीं—बड़े पाप के लिए बड़ा खर्च भी चाहिए।"

छन्नू की दादी ने कहा—"और नहीं तो क्या, दान-पुन्न से ही पाप कटते हैं। दान-पुन्न में किफायत ठीक नहीं।"

मिसरानी ने कहा—"और फिर माजी आप लोग बड़े आदमी ठहरे। इतना खर्च कौन आप लोगों को अखरेगा?"

रामू की माँ ने अपने चारों ओर देखा—सभी पंच पंडितजी के थे। पंडित परमसुख मुस्करा रहे थे। उन्होंने कहा—"रामू की माँ, एक तरफ तो बहू के लिए कुम्भीपाक नरक है और दूसरी तरफ तुम्हारे जिम्मे थोड़ा सा खर्च है। सो उससे मुँह न मोड़ो।"

एक ठंडी साँस लेते हुए रामू की माँ ने कहा, "अब तो जो नाच नचाओगे नाचना ही पड़ेगा।"

पडित परमसुख ज़रा कुछ बिगड़ कर बोले—'रामू की मा ! यह तो खुशी की बात है अगर तुम्हें यह अखरता है तो न करो—मैं चला।' इतना कह कर पडितजी ने पोथा पत्रा बटोरा।

अरे पडितजी, रामू की मा को कुछ नहीं अखरता—बेचारी को कितना दुःख है। बिगड़ो न।' मिसरानी, छन्नू की दादी और किसनू की माँ ने एक स्वर मे कहा।

रामू की मां ने पडितजी के पैर पकड़े और पडितजी ने अब जमकर आसन जमाया।

"और क्या हो ?"

इक्कीस दिन के पाठ के इक्कीस रुपये और इक्कीस दिन तक दोनों वक्त पांच-पांच ब्राह्मणों को भोजन करवाना पड़ेगा।" कुछ रुक कर पडित परमसुख ने कहा—'सो इसकी चिन्ता न करो, मैं अकेले दोनों समय भोजन कर लूँगा और मेरे अकेले भोजन करने से पांच ब्राह्मणों के भोजन का फल मिल जायगा।'

"यह तो पडित जी ठीक कहते है, पडितजी की तोंद तो देखो। मिसरानी ने मुस्कराते हुए पडितजी पर व्यंग किया।

"अच्छा तो फिर प्रायश्चित का प्रबन्ध करवाओ रामू की मा ग्यार तोला सोना निकालो, मै उसकी बिल्ली बनवा लाऊँ—दो घण्टे मे बनवाकर लौटूँगा तब तक सब पूजा का प्रबन्ध कर रखो—और देखो पूजा के लिए—"

पडितजी की बात खतम भी न हुई थी कि महरी हांफती हुई कम मे घुस आई, और सब लोग चौंक उठे। रामू की मां ने घबड़ाकर पू" अरी क्या हुआ री ?"

महरी ने लड़खड़ाते हुए स्वर मे कहा—"मांजी, बिल्ली तो उठ भाग गई।"

———

श्री सियारामशरण गुप्त

७. कोटर और कुटी

दोपहरी का समय था। सूर्य अग्नि मालाओं से पृथ्वी का शरीर दग्ध कर रहा था। वृक्षों के पत्ते निस्पन्द थे। किसी घोर भय कर दण्ड की आशंका से सांस-सी साधे खड़े थे। इसी समय अपने छोटे से कोटर के भीतर बैठे हुए चातक पुत्र ने कहा—'पिताजी!'

बाहर की सहज स्निग्ध वनस्पति के वर्तमान रूखेपन की तरह ही वह स्वर कुछ नीरस था। चातक ने अपनी चोंच कुमार की पीठ पर फेरते हुए प्यार से कहा—"क्या है बेटा?

"है और क्या? प्यास के मारे चोंच तक प्राण आ गये हैं।'

'बेटा अधीर न हो। समय सदा एक सा नहीं रहता।"

"तो यही तो मैं भी कहता हूँ—समय सदा एक सा नहीं रहता। पुरानी बातें पुराने समय के लिये थी। आप अब भी उन्हें इस तरह छाती से चिपकाये हुए हैं, जिस तरह वानरी मरे बच्चे को चिपकाये रहती है। घनश्याम की बाट आप जोहते रहिये। अब मुझसे वह नहीं सह सकता।"

'घनश्याम के सिवा हम और किसी का जल ग्रहण नहीं करते, यही हमारे कुल का व्रत है। इस व्रत के कारण अपने गोत्र में न तो किसी की मृत्यु हुई और न कोई दूसरा अनर्थ।

'आप कहते हैं—कोई अनर्थ नहीं हुआ, मैं कहता हूं, प्यास की यन्त्रणा से बढ़ कर और अनर्थ क्या होगा? जहां से भी होगा, मैं जल ग्रहण करूंगा ही।"

चातक सिहर कर पंख फड़फड़ाने लगा। मानो उसने उस अश्रव्य वचनों और मानो के बीच में, कोलाहल की परिखा सी खड़ी कर देना चाही। थोड़ी देर तक चुप रह कर वह बोला—"बेटा, धैर्य रख। मेह अपने इस व्रत के कारण ही बरसता है और धरती माता की गोद हरी-भरी होती है। यह पानी इस तरह नष्ट करने की वस्तु नहीं है।

लाडले लड़के ने कहा 'व्रत पालन करते हुए इतने दिन तो हो गये पानी का कहीं चिह्न तक नहीं है। गरमी ऐसी पड़ रही है कि धरती के नदी नाले सब सूख गये। फिर सूर्य के और निकट रहने वाले आकाश के मेघों में पानी टिक ही कैसे सकता है।"

"बेटा, पृथ्वी का यह निर्जल उपवास है। इसी पुण्य से उसे जीवन-दान मिलेगा। भोजन का पूरा स्वाद और पूरी तृप्ति पाने के लिए थोड़ी-सी क्षुधा सहन करना अनिवार्य ही नहीं, आवश्यक भी है।"

"पिताजी मैं थोड़ी सी क्षुधा से नहीं डरता। परन्तु यह भी नहीं चाहता कि क्षुधा ही क्षुधा सहन करता रहूं। मैं ऐसा व्रत व्यर्थ समझता हूं। देवताओं का अभिशाप लेकर भी मैं इसे तोड़ूंगा। घनश्याम को भी तो सोचना था कि उनके बिना किसी के प्राण निकल रहे हैं। आदमी ने मेघों पर अविश्वास करके कृषि की रक्षा के लिए नहर, तालाब और कुओं का बन्दोबस्त कर लिया है। कृषि ने आपकी तरह सिर नहीं हिलाया कि मैं तो घनश्याम के सिवा और किसी का जल नहीं छुऊंगी। हमी क्यों इस तरह का कष्ट सहें। आप चाहे मुझे रखें या छोड़ें, मैं यह झंझट न मानूंगा।"

चातक ने देखा, मामला बेढब हुआ चाहता है। यह इस तरह न मानेगा। कहा—"यह बताओ तुम जल कहाँ से ग्रहण करोगे।

चातक-पुत्र चुप। उसने अभी तक इस बात पर विचार ही नहीं किया था। वह सोचता था, जिस प्रकार सारे जीव जन्तु जल पीते हैं, ...

प्रकार में भी पीऊँगा। परन्तु वह प्रकार कैसा है, यह उसकी समझ में न आया था।

लड़के को चुप देख कर पिता ने समझा—'कमजोरी यही है।' वह जानता था कि कमजोरी के ऊपर से ही आक्रमण करना विजय की पहली सीढ़ी है। बोला—"चुप कैसे रह गए? बताओ तुम जल कहाँ से ग्रहण करोगे?"

हिचकिचाकर, अपनी बात स्वयं ही खण्ड खण्ड करते हुए लड़के ने कहा—जहाँ से और दूसरे ग्रहण करते हैं, वहीं से मैं भी करूँगा।

पिता ने कहा—पड़ोस में वह पोखरी है। अनेक पशु-पक्षी और आदमी भी वहाँ जल पीते हैं। तुम वहाँ जल पी सकोगे? बोलो है हिम्मत?

चातक-पुत्र को उस पोखरी के स्मरण से ही फुरहरी आ गई। उसमें कितनी गन्दगी है। पत्ते, डठले आदि गिर-गिर कर उसमें सड़ती रहती हैं। कीड़े कुलबुलाते हुए उसमें साफ दिखाई देते रहते हैं। लोग उसमें कपड़े निथारने आते हैं या गन्दे करने, कई बार सोचने पर भी वह समझ नहीं सका था। एक बार एक आदमी को अँजुली से पानी पीते देख, उसने पिता से कहा था—'देखो पिताजी, ये कैसे घृणित जीव हैं।' अवश्य ही उसने अपने व्रत का जिक्र उस समय नहीं किया था, परन्तु उसके मन में उसी का गर्व छलक उठा था। अब इस समय वह पिता से कैसे कहे कि मैं उस पोखरी का पानी पीऊँगा।

चातक बोला—"बेटा, अभी तुम ना समझ हो। चाहे जहाँ से पानी ग्रहण करना इस समय तुम आसान समझ रहे हो। परन्तु जब इसके लिए बाहर निकलोगे, तब तुम्हें मालूम पड़ेगा। हमारी प्यास के साथ करोड़ों की प्यास है और तृप्ति के साथ करोड़ों की तृप्ति। तुमसे अकेले तृप्त होते कैसे बनेगा?"

चातक पुत्र इस समय अपने हठ को पुष्ट करने वाली कोई युक्ति सोच रहा था। पिता की बात बिना सुने वह बोल उठा—"मैं गंगा-जल ग्रहण करूँगा।

चातक ने कहा—"गंगाजी तो यहाँ से पाँच दिन की उड़ान पर है। तू नहीं मानता, तो जा। परन्तु यदि तूने और कहीं एक बूँद भी पी ली तो हमें मुँह न दिखाना।"

चातक-पुत्र प्रणाम करके फुर्र से उड़ गया।

कुटीर

बुद्धन का कच्चा खपरैल का घर था? छोटी-छोटी दो कोठरियाँ, फिर उन्हीं के अनुरूप आँगन और उसके आगे पौर। पुराना छप्पर नीचे झुक कर, घर के भीतर आश्रय लेने की बात सोच रहा था। जीर्ण-शीर्ण दीवारें रोशनदान न होने की साध दरारों के 'दतक' में पूरी किया चाहती थीं।

उस घर में और कुछ हो या न हो, आँगन के बीच, थपु पलचा के विश्राम करने योग्य नीम का एक वृक्ष था। तीसरी उड़ान की थकान मिटाने के लिए, वह उसी पर उतरा।

नीम की स्निग्धता और सघनता ने चातक पुत्र को अपने निजी सहकार की याद दिला दी। विश्राम करके भी उसके जी में एक प्रकार की व्याकुलता उत्पन्न हो गई। पकी निबौरी की तरह उस वेदना में भी कुछ माधुर्य था।

नीचे वृक्ष की छाया में बुद्धन लेटा हुआ था। अवस्था उसकी पचास के ऊपर थी। फिर भी, अभी कुछ दिन पहले तक, उसके पैरों में जीवन यात्रा की इतनी ही मंजिल तय करने योग्य शक्ति और मालूम होती थी। एक दिन एकाएक पक्षाघात ने उसे अचल कर दिया। जीवन और मृत्यु ने आपस में सुलह करके, मानो आधे-आधे शरीर का बँटवारा कर

लिया। स्त्री पहले ही गत हो चुकी थी। घर में १५-१६ वर्ष का एकमात्र पुत्र, गोकुल ही अवशिष्ट था। उसी के सहारे उसके दिन पूरे हो रहे थे।

गोकुल एक जगह काम पर जाता था। काम करके प्रतिदिन सन्ध्या समय तक लौट आता था। आज अभी तक नहीं आया था इसलिए बुद्धन उसके लिए छटपटा रहा था। ऊपर आकाश में तारे छिटक आये थे। इधर-उधर चारों ओर सन्नाटा था और घर में अकेला बुद्धन। यद्यपि उसमें खाट से नीचे उतरने तक की शक्ति नहीं थी तो भी उसका मन न जाने कहाँ-कहाँ चौकड़ी भर रहा था। गोकुल सवेरे थोड़े से चने चाबकर काम पर गया था। बुद्धन के लिए भी थोड़े से चने और पीने का पानी यथास्थान रखा गया था। आज खाने के लिए घर में और कुछ था ही नहीं। कह गया था—"शाम को मजूरी के पैसों का आटा लाकर रोटी बनाऊँगा। परन्तु आज वह अभी तक नहीं आया था। अनेक आशंकाओं से बुद्धन का मन चंचल हो उठा। जो समय आनन्द की स्निग्ध शीतल छाया में शीतकाल के दिन की तरह मालूम भी नहीं होने पाता और निकल जाता है वही दुःख की दाहक ज्वाला में, निदाघ के दीर्घ दिनों की भाँति, पहाड़ हो उठता है। रात बहुत नहीं बीती थी, परन्तु बुद्धन को मालूम हो रहा था कि बरसों का समय हो गया। बार बार ध्यान लगाये उस सन्नाटे में वह गोकुल के पदशब्द सुनने का प्रयत्न कर रहा था।

बड़ी देर बाद उसकी प्रतीक्षा सफल हुई। किवाड़ खुलने की आवाज सुनकर वह चौंका। वास्तव में यह गोकुल ही था। उसने कहा—'कौन गोकुल! बेटा आज बड़ी देर लगाई?'

गोकुल धीरे से पिता की खाट के पास आकर रोने लगा।

बुद्धन ने घबराकर पूछा—'क्या हुआ, बेटा, क्या हुआ?

"आज मजूरी नहीं मिली? अब कैसे चलेगा?'

"एँ, मजूरी नहीं मिली! फिर इतनी देर क्यों हुई?'

प्रकृतिस्थ होकर गोकुल ने अपना हाल सुनाया—

सवेरे घर से निकलते ही गोकुल को सामने खाली घड़ा मिला। देखकर उसके पैर ढीले पड़ गये। सोचा आज भगवान् ही मालिक है। काम पर पहुँचकर उसने देखा—ओवरसियर साहब आज कुछ ज्यादा खफा हैं। इंजीनियर साहब काम देखने आये थे। जान पड़ता है, काम देखने की जगह वे ओवरसियर साहब को ही देखने गये थे। अन्याय का वह बोझ उन्होंने दिन भर मजदूरों पर अच्छी तरह उतारा। शाम को मजदूरी देने के समय भी साफ इन्कार कर दिया— आज दाम नहीं दिये जायेंगे—उस अदालत के फैसले की तरह, जिसकी कहीं अपील नहीं हो सकती, ओवरसियर साहब का हुक्म मानकर मजदूर अपने-अपने घर लौट गये।

गोकुल लौटा चला आ रहा था कि एक जगह उसे रास्ते में कुछ पड़ा हुआ दिखाई दिया। पास पहुँचने पर मालूम हुआ, रुपये पैसे के रखने का बटुआ है। उठाकर देखा तो काफी वजनदार था। सोच में पड़ गया—इसे खोलकर देखना चाहिये या नहीं। न देखने का निश्चय ही उसे दृढ़ करना पड़ा। कौतूहल निवृत्ति करने के लिए उसने टटोला। टटोलने पर मालूम हुआ—रुपये हैं और बहुत कम भी नहीं। थोड़ी देर तक वह वहीं खड़ा खड़ा सोचता रहा—इसका क्या करूँ? उसके पिता ने उसे अब तक जो कुछ सिखाया था, उसने उसे इस बात के सोचने का अवसर ही नहीं दिया कि बटुआ अपने पास रख ले। वह यही सोच रहा था कि बटुआ किसका है? जब उसे मालूम होगा कि उसका बटुआ खो गया है, तब उसकी क्या दशा होगी? रुपये पैसे का क्या मूल्य है, यह बात वह कुछ दिनों में ही अच्छी तरह जान गया था। उस व्यक्ति की उस समय की दशा का विचार करके, वह इस प्रकार सिहर उठा, मानो उसी का बटुआ खो गया हो।

उसे ध्यान आया कि कुछ दूर उसने एक गाड़ी जाती हुई देखी थी। उस पर, कान में मोती पिरोई सोने की बाली पहने हुए, एक महतो बैठे

थे। सम्भव हो, यह बटुआ उन्ही का हो। और किसी के पास इतने रुपये होना आसान बात नही है। यहाँ कुएँ पर गाडी रोककर उन्होने पानी पिया होगा और आग जलाकर तमाखू भरी होगी। एक जगह आग जलाई जाने के चिन्ह मौजूद थे। उसने इस बात का विचार भी नहीं किया कि गाडी तक जाने में कितना समय लगेगा और वह दौड पडा।

'लगभग आध घंटे के परिश्रम से वह उस गाडी के पास पहुँच गया। गोकुल ने हांफते-हांफते पूछा—महतो, तुम्हारा कुछ खो तो नहीं गया?'

महतो ने चौककर गाडी के इधर-उधर देखा। साथ ही जैब पर हाथ रखा तो पाषाण की तरह निस्पन्द हो गये। गोकुल से महतो की वह अवस्था न देखी गई। वह बटुआ दिखाकर, उसने झट से प्रश्न कर दिया—यह तुम्हारा है?

एक क्षण में ही जीवन और मृत्यु का द्वन्द-सा हो गया। मानो बिजली के झटके ने प्रकाश बुझाकर, घर फिर से उद्दीप्त कर दिया गया हो! महतो ने कहा—'भगवान् तुझे सुखी रक्खे भैया। इसे कहां पाया?'

'रास्ते में पडा था। इसमें कितने रुपये हैं?'

महतो ने हिसाब लगाकर बताया—'बयालीस रुपये, एक अठन्नी, एक घिसी हुई बेदाम दुअन्नी या दस बारह आने पैसे, एक कागज, एक चाँदी का छल्ला'—

गोकुल ने बटुआ खोलकर रुपये गिने। सब ठीक निकले। बटुआ हाथ में लेकर महतो की आँखों में आँसू भर आये। बोले—'इतनी बडी रकम पाकर भी, जिसे उसका लोभ न हो, भैया मैंने ऐसा आदमी आज तक नहीं देखा। अगर किसी और को यह बटुआ मिलता, तो मेरा मरण हो जाता। मेरा रोम रोम आसीस दे रहा है, भगवान् तुम्हें सदा सुखी रक्खे। यह कहकर महतो ने बटुए से निकाल कर गोकुल को दो रुपये

देने चाहे । उसने सिर हिलाकर कहा—'मेरे बप्पा ने किसी से भीख लेने के लिए मुझे मना कर दिया है । मुफ्त के ये रुपये मैं न लूँगा ।'

महतो के सजल नेत्र विस्मय से खुले ही रह गये । गोकुल थोड़ी ही देर में उस अन्धकार में उनकी आँखों से ओझल हो गया ।

सब वृत्तान्त सुनाकर गोकुल अपराधी की भाँति खड़ा होकर बोला "बप्पा, आज खाने के लिए कुछ नहीं है । महतो से कुछ उधार माँग लाता, तो सब ठीक हो जाता । मेरी समझ में यह बात उस समय आई ही नहीं ।

बुद्धन की आँखों से झर-झर आँसू झरने लगे । गोकुल को अपनी दोनों भुजाओं में भरकर, उसने छाती से लगा लिया । आनन्दातिरेक ने उसका कण्ठावरोध कर दिया । उसे मालूम हुआ कि उसके क्षुधित और निर्जीव शरीर में प्राणों का संचार हो गया है । उसे जिस तृप्ति का अनुभव होने लगा, वह दो-एक दिन की तो बात क्या, जीवन भर की क्षुधा को शान्त कर सकती है । धन-सम्पत्ति, मान और बड़ाई सब उसे तुच्छ-से प्रतीत होने लगे । मानो एकाएक उसके सब दुःख रोग दूर हो गये हैं । अब वह बिना किसी चिन्ता के मृत्यु का आलिङ्गन इसी क्षण कर सकता है ।

बड़ी देर में अपने को सँभालकर बुद्धन बोला—"अच्छा ही किया बेटा, जो तू महतो से रुपये उधार नहीं लाया । वह उधार माँगना भी एक तरह का माँगना ही होता । भगवान् ने तुझे ऐसी बुद्धि दी है, मैं तो यही देखकर निहाल हो गया । दो-एक दिन की भूख हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती । जिस तरह चातक अपने प्राण देकर भी मेघ के सिवा किसी दूसरे का जल लेने का व्रत नहीं तोड़ता, उसी तरह तू भी ईमानदारी की टेव न छोड़ना । मुझे मालूम हो गया कि यह मुझसे भी अच्छी तरह जानता है । फिर भी कहता हूँ, सदा ऐसी ही मति रखना । चाहे जितनी बड़ी विपत्ति पड़े, अपनी नियत न डालना ।"

ऊपर चातक-पुत्र सुन रहा था। उसकी आँखों से भी झर-झर आँसू झरने लगे। बड़ी कठिनता से वह रात बिता सका। पौ फटते ही बड़े सवेरे वह फिर उड़ा, परन्तु आज वह विपरीत दिशा को चला, उसी दिशा को जिधर से वह आया था। उसकी उड़ान पहले से तेज हो गई थी, फिर भी अपने कोटर तक पहुँचने में उसे चार दिन की जगह सात दिन लग गये। दूसरे दिन से ही मेघों ने उठकर ऐसी झड़ी लगा दी कि बीच-बीच में कई जगह रुककर ही वह वहाँ तक पहुँच सका।

श्री यशपाल

८. कुत्ते की पूँछ

श्रीमतीजी कह रही थी—"उल्टी बयार फिल्म की बहुत चर्चा है, देख आना चाहिए।"

देख आने मे एतराज न था परन्तु सिनेमा शुरू होने के समय अर्थात् साढे छ बजे तक तो दफ्तर के काम से ही छुट्टी नही मिल पाती।

दूसरे शो में जाने का मतलब है—बहुत देर से सोना, कम सोना और अगले दिन काम ठीक से न कर सकना। लेकिन जब 'उल्टी बयार' को तीसरा हफ्ता लग गया तो यह मान लेना पड़ा कि फिल्म अवश्य ही देखने लायक होगी।

रात के साढ़े बारह बजे सिनेमा हाल से निकलने पर टाँगे का दर कुछ बढ जाता है। आने दो आने में कुछ बन बिगड नही जाता, लेकिन टाँगेवाले के सामने अपनी बात रखने के लिए कहा—"नही पैदल ही चलेगे। चाँदनी रात है। मुश्किल से चार कदम चलने का मौका मिला है।"

उज्ज्वल चाँदनी मे सूनी सड़क पर सामने चलती जाती अपनी दोनो परछाईं पर कदम रखते चले जा रहे थे। जिक्र था, फिल्म मे कहाँ तक स्वाभाविकता है और कितनी कला है? स्त्रियो से भी कला के विषय मे बात की जा सकती है खास कर परिचय नया हो। परन्तु स्वय अपनी स्त्री से जिसे आदमी रग-रोएँ से पहचानता हो, बहस या विचार विनिमय का क्या मूल्य?

श्रीमती को शिकायत है, दुनियाँ भर के सैंकड़ों विषयों पर सैंकड़ों लोगों से बहस करके उनसे भी मैं अभी बहस नहीं करता। मैं उन्हें किसी योग्य नहीं समझता। इस अभियोग का बहुत माकूल जवाब मैंने सोच निकाला—जिस आदमी से विचारों की पूर्णत एकता हो उससे बहस कैसी ?

इस उत्तर से श्रीमती को बहुत दिन तक सतोष रहा कि विद्वान् समझे जाने वाले पति के समान विचार होने के कारण वे भी विद्वान् हैं। परन्तु दूसरों पर बहस की संगीन चला सकने के लिये पति नाम के रेत के बोरे पर कुछ अभ्यास करना भी तो जरूरी होता है। इसीलिए एक दिन खीझ कर बोलीं—"बहस न सही आदमी बात तो करता है। हम से तो कभी कोई बात भी नहीं करता।"

सो पति होने का टैक्स चुराने के लिए अपनी स्त्री के साथ कला का जिक्र कर चाँदनी रात का खून हो रहा था। मैं कह रहा था और वे हैं हैं कर हामी भर रही थीं।

अचानक वे बोल उठीं—"यह देखो !"

स्त्री के सामने कला की बात करने की अपनी समझदारी पर दाँत पीस कर रह गया। सोचा वही बात हुई—"राजा कहानी कहे, रानी जूँ टटोले।"

देखा - हलवाई की दुकान थी। सौदा उठा लिया गया था। बिजली का एक बल्ब अभी जल रहा था। लाला दुकान के तख्ते पर चिलम उलट कर दीवार से लगे ऊँघ रहे थे। नीचे सड़क पर बड़ी कड़ाई ईंट के सहारे टिका कर रखी गई थी। उसे माँजने के प्रयत्न में छोटी उम्र का लड़का उसी में सो रहा था। कालिख से भरा जूना उसके हाथ में थमा था और उसकी बाँह फैली हुई थी। दूसरा हाथ कड़े को थामे था। कड़ाई को घिसते घिसते लड़का ओंघा गया और फैली हुई बाँह पर सिर रख सो गया।

एक कुत्ता कड़ाई के किनारे-किनारे बच रही मलाई को चाट रहा

गा। मैं देखकर परिस्थिति समझने का यत्न कर रहा था, कि श्रीमतीजी ने पिघले हुए स्वर में क्रोध का पुट देकर कहा—"देखते हो जुल्म ? क्या तो बच्चे की उम्र है और रात के एक बजे तक यह कढ़ाई जिसे वह हिला नहीं सकता, उससे मँजाई जा रही है।"

मेरी बांह में डाले हुए हाथ पर बोझ दे वे कढ़ाई पर झुक गईं और बच्चे की बांह को हिला-पुचकार कर उठाने लगीं।

लड़का नींद से चौंककर झपाटे से कढ़ाई में जूने के रगड़े लगाने लगा, परन्तु श्रीमतीजी के पुचकारने से उसने नींद भरी आँख उठाकर उनकी ओर देखा।

परिस्थिति को समझ मार्क्सवादी विचार धारा के अनुसार कहा—"मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण की कोई सीमा नहीं।"

मेरी इस बात को समझने योग्य भाषा में प्रकट करने के लिए बोलीं—'हाय कैसे पत्थरदिल होते हैं जो इस उम्र में बच्चों को इस तरह बेच डालते हैं ? और इस राक्षस को देखो, बच्चे को मेहनत पर लगा खुद सो रहा है ?'

फिर वे बच्चे को पुचकार कर साथ चलने के लिए पुकारने लगीं। इस शोर शराबे से नाना की आँख खुल गई। नींद से भरी लाल आँखों को झपकाते हुए नाना उठने लगे, पर इससे पहिले कुछ समझें या जान पाएँ श्रीमतीजी लड़के का हाथ थाम ले चलीं। फिल्म और कला की चर्चा श्रीमतीजी की करुणा और क्रोध के प्रवाह में डूब गयी थी। कानूनी पेशा होने के कारण कानून की जद का खयाल आया। समझाया—"इस उम्र बच्चे को उसके माँ बाप की अनुमति के बिना इस प्रकार खींच ले जाने से पुलिस के झंझट में पड़ना होगा।

राजा और समाज के कानून से जबरदस्त कानून है स्त्रियों का। पति को बिना किसी हीले हुज्जत के स्त्री के सब हुक्म मानने ही पड़ते हैं। श्रीमती अपना कानून चलाकर कहा—"इसके माँ-बाप आकर ले जायेंगे।

हम कोई लड़के को भगाये थोड़े लिये जा रहे हैं। लड़के पर इस तरह जुल्म करने का किसी को क्या हक है ? यह भी कोई कानून है ?

लाला ग्रौर भुनभुनाते रहे ग्रौर हम उस लड़के को लिए चले ग्राये। लाला बोले क्यों नहीं ? कह नहीं सकता। शायद कोई बड़ा सरकारी अफसर समझकर चुप रह गया।

लड़के से पूछने पर मालूम हुआ कि दर-असल उसके माँ-बाप थे नहीं। मर गये थे। कोई उसका दूर का रिश्तेदार उसे लाला के यहाँ छोड़ गया था।

दूसरे रोज लाला बँगले के ग्रहाते में हाजिर हुए ग्रौर बोले कि यों हम माई-बाप हैं लेकिन मेम साहब की ज्यादती है। लड़के के बाप की तरफ लाला के साठ रुपये ग्राते हैं। वह मर गया है। लाला उलटे ग्रौर अपनी गाँठ से लड़के को खिला-पहना कर पाल-पोस रहे थे। लड़के की उमर ही क्या है कि कुछ काम करेगा ! ऐसे ही दूकान पर चीज धर-उठा देता है सो मेम साहब उसे भी उठा लाईं। लाला बेचारे पर जुल्म ही जुल्म है। उन्हें उनके साठ रुपये दिला दिये जायें। सूद वे छोड़ देने को तैयार हैं। या फिर लड़का उनके पास रहे।

बरामदे में फर्श पर जूते की ऊँची एड़ी पटक, भौं चढ़ाकर श्रीमती ने कहा—"ग्राल राईट इसके बाद वे शायद कहना चाहती थीं—साठ रुपये ले जाग्रो।"

परिस्थिति नाजुक देख बीच में बोलना पड़ा।

"लाला जी हुग्रा, ग्रब चले जाग्रो वरना लड़का भगाने ग्रौर 'क्रू-एल्टी टू चिल्डरन' (बच्चों के प्रति निर्दयता) जुरम में गिरफ्तार हो जाग्रोगे।" ग्रहाते के बाहर जाते हुए लाला की पीठ से नजर उठाकर श्रीमतीजी ने विजय गर्व से मेरी ग्रोर देखा। उनका ग्रभिप्राय था देखो तुम खामखाह डर रहे थे। हमने कैसे सब मामला ठीक कर लिया। तुम कुछ भी नहीं समझ सकते !

लडके का नाम था हुक्मा। श्रीमतीजी ने कहा–यह नाम ठीक नही, होना चाहिए हरीश। लडके की कमर पर केवल एक अँगोछा मात्र था, शेष शरीर ढका हुआ था मैल के आवरण से। सिर के बाल गर्दन और कानो पर लटक रहे थे।

लाइफ ब्वाय साबुन की झाग मे घुल घुलकर वह मैल बह गया और हरीश सावला सलोना बालक निकल आया। दरबान के साथ सैलून मे भेजकर उसके बाल भी छँटवा दिये गये। बिशू के लिए नई कघी मगाकर पुरानी हरीश के बालो पर लगा दी गई। बिशू के कपडे भी हरीश के काम आ सकते थे, परन्तु चार वर्ष के लडके मे अन्तर काफी रहना है। खेर जो भी हो हफ्ते भर मे हरीश के लिए भी नेवीकट कालर के पाँच-छः कमीज और नेकर मिल गये। उसके असुविधा अनुभव करने पर भी उसे जुराँब और जूता पहनना पडता। श्रीमतीजी ने गम्भीरता से कहा- 'उसके शरीर मे भी।"—उनका अभिप्राय था अपने पेट के लडके बिशू से परन्तु इसका कारण था, वह यह कि बिशू आखिर पुत्र तो मेरा भी है न।

उन्होने कहा—"उसके भी दिमाग है। वह भी मनुष्य प्राणी है और उसे मनुष्य बनाना भी उनका कर्तव्य है।" हरीश के कोई काम स्वय कर देने पर प्रसन्नता के समय वे मेरा ध्यान आकर्षित कर कहती–"लडके में स्वाभाविक प्रतिभा है। अगर उसे अवसर मिले तो वह क्या नही कर सकेगा ?–हाँ, उस मजदूर का क्या नाम था जो अमेरिका का प्रेसीडेण्ट बन गया था ? मौका मिले तो आदमी उन्नति कर क्या नही सकता।"

चार वर्ष की आयु ऐसी नही, जिसमे अधिकार या गर्व न हो सके या श्रेणी-विशिष्टता का भाव न हो। अपनी जगह पर अपने से नीची स्थिति के बालक को अधिकार जमाते देखकर, अपनी माँ को दूसरे के सिर पर हाथ फेरते देख और हरीश को अपनी सम्पत्ति का प्रयोग करते देख बिशू को ईर्ष्या होने लगी। रोनी सूरत बनाकर वह होठ लटका लेता या हाथ मे थमी किसी चीज से हरीश को मारने का यत्न करने लगता। श्रीमतीजी

को इन सब बातो मे गरीबी और मनुष्यता का अपमान दिखाई देता। गम्भीरता से वे विशू को ऐसा अन्याय करने मे रोकतीं और हरीश का साहस बढ़ाकर उसे अपने आपको किसी से कम न समझने का उपदेश देतीं।

हरीश बात बात मे सहमता, सकपकाता, पास बैठने के बजाय दूर चला आता और विशू से खेलता भी तो उसकी आँखों मे विशू के खिलौनों के लोभ की झलक दिखाई देती रहती। श्रीमतीजी उसे सन्तुष्ट कर उसका भय मिटाकर उसे विशू के साथ समानता के दर्जे पर लाने का प्रयत्न करतीं। कई दफे उन्होने शिकायत की कि मेरे स्वर मे हरीश के लिए वह अपनापन क्यो नही आ पाता जो आना चाहिए, जैसा विशू के लिए है। इस मामले मे कानून का हवाला या वकालत की जिरह मेरी मदद नही कर सकती थी, इसीलिए चुप रहने के सिवा चारा न था।

हरीश के प्रति सहानुभूति अनुभव कर उसे मनुष्य बनाने की इच्छा रखते हुए भी मै श्रीमतीजी को इस बात का विश्वास न दिला सका। हरीश के प्रति उनकी वत्सलता और प्रेम मेरी पहुँच से एक बालिश्त ऊँचा ही रहता।

श्रीमतीजी को शिकायत थी कि हरीश आकर अधिकार से उनके पास क्यो नहीं बैठता और क्यो नही अपने मन की बात कहता ? क्यो नही ज़रूरत की चीज के लिए ज़िद करता ? उन्हे ख्याल था कि इन सबका कारण था, मेरा भय।

एक दिन बुद्धिमानो से गहरी सूझ की बात करने के लिए उन्होने सुना कर कहा—"पुरुष सिद्धात और तर्क की लम्बी बातें कर सकते हैं, परन्तु हृदय को खोलकर फैला देना उनके लिए कठिन है।" सोचा—श्रीमतीजी को समानता की भावना के लिए उत्साहित कर उन्हे अपना बड़प्पन अनुभव करने के लिए मैं अवसर पेश नही कर पाता हूँ, यही मेरा कसूर है।

एक रियासत के मुकदमे में सोहरावजी को जूनियर बनकर समस्तीपुर जाना पड़ा। उम्र बढ़ जाने पर प्रणय या अनुराग तो उतना तीव्र नहीं रहता, पर घर की याद जवानी में भी अधिक सताती है। कारण है, शरीर का अभ्यास। निश्चित समय और स्थान पर आवश्यकता की वस्तु का सहज मिल जाना विदेश में नहीं हो सकता और न औचित्य या सन्तोष ही मिल सकता है।

समस्तीपुर में लग गए चार मास। मौमन आमदनी से अढ़ाई गुना आमदनी के लोभ ने सब सुविधाओं को परास्त कर दिया। घर से सम्बन्ध था केवल श्रीमतीजी के पत्र द्वारा। कभी सप्ताह में तीन पत्र आते। विनू को जुकाम हो जाने पर एक सप्ताह में चार पत्र भी आए। प्रारम्भ में पत्रों में हरीश के जिक्र का एक पैराग्राफ रहता था और दूसरे पैराग्राफ में भी थोड़ी चर्चा। सोचा—मेरी गैर-हाजिरी में अनुदारता से मुक्ति पाकर लड़का तीव्र गति से मनुष्य बन जायगा।

कुछ पत्रों के बाद हरीश की खबरों की सरगर्मी कम हो गई। फिर शिकायत हुई कि वह पढ़ने-लिखने की ओर मन न लगाकर गली में मैले-कुचैले लड़कों के साथ खेलता रहता है। बाद में खबर आई कि वह कहना नहीं मानता, स्वभाव का अधिक जिद्दी है। बहुत डल (सुस्त दिमाग) है। हर समय कुछ खाता रहना चाहता है। इसी से उसका हाजमा ठीक नहीं रहता।

लौट कर आने पर बैठा ही था कि श्रीमतीजी ने शिकायत की—"सचमुच तुम बड़े अजीब आदमी हो! हम यहाँ फिक्र में मरते रहे और तुम से खत न लिखा जा सकता था! ऐसी भी क्या बेपरवाही! यहाँ यह मुसीबत कि लड़कों को खाँसी हो गयी। तीन तीन दफे डाक्टर को बुलवाना पड़ता था। घर में सिर्फ दो नौकर हैं। वे घर काम करें या डाक्टर को बुलाने जाएँ? इस लड़के को देखो—शरीर की ओर संकेत करके—जरा डाक्टर बुलाने भेजा तो सुबह से दुपहर तक गलियों में खेलता

फिरा और डाक्टर का घर हमें नहीं मिला। डाक्टर जमील को शहर मे कौन नही जानता ?"

हरोश बिग्गू को गोद मे लिए श्रीमतीजी की ओर न देख सहमता हुआ मेरे समीप आना चाहता था। इस उम्र मे भी आदमी इतना चालाक हो सकता है ? हरोश को बिग्गू से इतना अधिक स्नेह हो गया था या वह उसे इसीलिए उठाए था कि उसे सम्हाले रखने पर उसे खाली खेलते रहने के कारण डाँट न पड़ेगी।

उसकी ओर देख श्रीमतीजी ने कहा—'अरे उसे खेलने क्यो नहीं देता ? तुझे कई दफे तो कहा, गुसलखाने में गीले कपड़े पड़े हैं। ऊपर सूखने डाल आ।'

हरोश महफिल मे यो निकाले जाने के कारण अपनी कातर आंखो से पीछे की ओर देखता चला गया। कुछ ही देर में वह फिर आ हाजिर हुआ। उसकी ओर देख श्रीमतीजी ने कहा। "हरोश, जाओ देखो पानी लेकर खस की टट्टियो को भिगा दो गुलो यो ही पानी मत फेंक देना। स्टूल पर खड़े होकर अच्छी तरह भिगो देना।'

मेरी ओर देखकर वे बोली—"जिस काम के लिए कहूँ कतरा जाता है। इसे पढ़ाने के लिए जो वह स्कूल के लड़के को चार रुपया देने के लिए तय किया था सो क्या नही आता ?"

बिग्गू का गले का बटन लगाते हुए श्रीमतीजी बोली—"खामख्वाह! पढ़े भी कोई, यह पढ़ना ही नही, पढ़ चुका यह ? बस खाने को हाय-हाय लगी रहती है। कोई चीज सँभालकर रखना मुश्किल हो गया है।

हरोश कमरे मे तो दाखिल न हुआ, मगर दरवाजे से झाँककर चक्कर जरूर काट गया। वह संदेह-भरी नजरों से कुछ ढूँढ रहा था। फल की टोकरी से कुछ लीचियाँ निकाल कर श्रीमतीजी ने बिग्गू के हाथ में दीं। उसी समय हरोश की ललचाई आँखें बिग्गू की ओर ताकती हुई दिखाई दीं ?

श्रीमतीजी खीज गई—"हरदम बच्चे के खाने की ओर आँखें उठाए रहता है। जाने कैसा भुक्खड़ है! इन लोगों को कितना ही खिलाओ, समझाओ, इनकी भूख बढ़ती जाती है ले इधर आ!' दो लोधियाँ उसके हाथ में देकर बोलीं—"जा, बाहर खेल, क्या मुसीबत है!"

उसी शाम को एक और मुसीबत आ गई। जो कपड़े हरीश ने सुबह सूखने को डाले थे, वे हवा में उड़ गए। श्रीमतीजी ने भिन्ना कर कहा—"तुम्हीं बताओ, मैं इसका क्या करूँ? वही बात हुई न कि कुत्ते का गू न लीपने का न पोतने का। अच्छी बला गले पड़ गयी। समझाने से समझना नहीं। इसकी सोहबत में विशू ही क्या सीखेगा? कोई भला आदमी आए, सिर पर आ सवार होता है। स्कूल भिजवाया तो वहाँ पढ़ता नहीं। लड़कों से लड़ता है। अपने आगे किसी को कुछ समझता थोड़े ही है, तुमने उसे लाट साहब बना दिया है। कमजात कहीं अपनी आदत से थोड़े ही जाता है?"—क्या उत्तर देता? बात टाल गया।

फिर दूसरे समय श्रीमतीजी ने विशू को उठा कर मेरी गोद में दे दिया। वे देखना चाहती थीं कि विशू मेरी गोद में बैठने से कैसा जान पड़ता है? उसी समय हरीश भी दौड़ कर आया और बिलकुल सटकर खड़ा हो गया। पोज़ का यों बिगड़ जाना श्रीमतीजी को न भाया। सुनाकर बोलीं,—'बन्दर को मुँह लगाने से वह नाचेगा ही तो! इन लोगों के साथ जितनी ही भलाई करो, उतना ही सर पर आते हैं। यह कोई आदमी थोड़े ही है!"

यह नहीं कह सकता हरीश कितना समझा और कितना नहीं, पर इतना जरूर समझा कि बात उसी के बारे में थी और यह उसके प्रति आदर की नहीं थी। इतना तो पालतू कुत्ता भी समझ जाता है। गले का स्वर ही यह प्रकट कर देता है। हरीश कतराकर चला गया और मुँडेर पर ठोड़ी रख कर गली में झाँकने लगा।

सोचने लगा वह कौन ढङ्ग हो सकता है कि अपनी बात भी कह सकूँ और श्रीमतीजी को भी विरोध न जान पड़े। कहा—"जानवर को आदमी बनाना बहुत कठिन है। उसे पुचकार कर पास बुलाने मे बुरा नही मालूम होता है, क्योकि उसमे हमे दया करने का सन्तोष होता है। परन्तु जानवर जब स्वयं ही पजे गोद मे रख मुंह चाटने का यत्न करने लगता है। तब अपना अपमानजान पड़ने लगता है ।"

सहसा आवाज गरम करते हुए श्रीमतीजी बोलीं—"तो मै कब कहती हूँ . "

उन्हे बात पूरी न करने दी। बात पूरी करने देता तो जाने कितना लम्बा वर्णन और जिरह सुननी पड़ती, इसलिए झट से काट कर कहा—"ओहो, तुम्हारी बात नही, मै बात कर रहा हूँ यह सरकार और मजदूरो के झगड़े की।"

मन मे भर गये क्रोध की लम्बी फुफकार छोड़कर उन्होने जानना चाहा, मै बहाना तो नही कर रहा। इससे पूछा—"सो कैसे ?"

उत्तर दिया—"यही सरकार मजदूरो की भलाई के लिए कानून पास करती है और जब मजदूरो का हौसला बढ़ जाता है तो वे खुद ही सुधार मांगने लगते है तब सरकार को उसका आन्दोलन दबाने की जरूरत महसूस होने लगती है।"

श्रीमतीजी को विश्वास हो गया कि किसी प्रकार का विरोध मै उनके व्यवहार के प्रति नही कर रहा। बोली—"तभी तो कहते हैं कुत्ते की पूँछ बारह बरस तक नली मे रखो, पर सीधी नही हुई। हां, उस रोज तो लाला साठ रुपये की धमकी दे रहा था बनिया ही ठहरा। कही सूद भी गिनने लगे तो जाने रकम कहाँ कहाँ तक पहुँचे ? इस झगड़े मे पड़ने से लाभ ?"

श्रीमतीजी का मतलब तो समझ गया परन्तु समझकर आगे उत्तर देना ही कठिन था। इसीलिए उनकी तरफ विस्मय से देखकर पूँछा—

"क्या मतलब तुम्हारा ?"

"कुछ नही"—उन्होने कहा। उन्हे झल्लाहट थी मेरी कम समझी पर और कुछ झेंप थी जानवर को मनुष्य बना देने के असफल अभिमान पर। मैं जानता हूँ—बात दब गई, टली नही, कल फिर यह प्रश्न उठेगा। परन्तु किया क्या जाय ? कुत्ते की पूँछ एक दफे काट लेने पर उसे फिर से उसकी जगह लगा देना कैसे सम्भव हो सकता है ? और मनुष्यता का चसका एक दफे लग जाने पर किसी को जानवर बनाए रखना भी तो सम्भव नही ?"

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

९. डाची

काटपी* सिकन्दर के मुसलमान जाट बाकर को अपने माल की ओर लालसा भरी निगाहों से ताकते देख कर चौधरी नन्दू वृक्ष की छाँह में बैठे बैठे अपनी ऊँची घरघराती आवाज में ललकार उठा—'रे रे अठे के करे है ?' और उसकी छः फुट लम्बी सुगठित देह जो वृक्ष के तने के साथ आराम कर रही थी, तन गई और बटन टूटे होने के कारण मोटी खादी के कुर्ते में उसका विशाल वक्षस्थल और उसकी बलिष्ठ भुजाएँ दृष्टिगोचर हो उठीं।

बाकर तनिक समीप आ गया। गर्द से भरी हुई छोटी नुकीली दाढ़ी और शरई मूछों के ऊपर गढ़ों में धँसी हुई दो आँखों में निमिषमात्र के लिए चमक पैदा हुई और जरा मुस्करा कर उसने कहा—'डाची देख रहा था चौधरी, कैसा खूबसूरत और जवान है, देख कर भूख मिटती है।'

अपने माल की प्रशंसा सुन कर चौधरी का तनाव कुछ कम हुआ खुश होकर बोला—'किशी साँ? कौनसी डाची ?'

'वह पहली तरफ से चौथी।' बाकर ने इशारा करते हुए कहा।

ओकाट× के एक घने पेड़ की छाया में आठ-दस ऊँट बँधे थे। उन्हीं में वह जवान साँड्नी अपनी लम्बी सुडौल और सुन्दर गर्दन बढ़ाए घने पत्तों में मुँह मार रही थी बड़े-बड़े ऊँचे ऊँटों,सुन्दर साँडनियों काली

---

* काटपी=गाँव

× ओकाट=एक वृक्ष विशेष।

बेडौल भैंसो, सुन्दर नागौरी सीगो वाले बैलो के सिवा कुछ न दिखाई देता था। गधे भी थे, पर न होने के बराबर। अधिकांश तो ऊँट ही थे। बहावल नगर मरुस्थल में होने वाली माल मण्डी में उनका आधिक्य है भी स्वाभाविक। ऊँट रेगिस्तान का जहाज है, इस रेतीले इलाके में आमदरफ्त, खेती-बाड़ी और बारबरदारी का काम उसी से होता है। पुराने समय में जब गाय दस दस और बैल पन्द्रह-पन्द्रह रुपये में मिल जाते थे तब भी अच्छा ऊँट पचास से कम में हाथ न आता था। अब भी जब इस इलाके में नहर आ गई है और पानी की इतनी किल्लत नही रही, ऊँट का महत्व कम नही हुआ; बल्कि बढ़ा ही है। सवारी के ऊँट दो दो सौ से तीन-तीन सौ तक पाये जाते हैं और वाही तथा बारबरदारी के भी अस्सी सौ से कम में हाथ नही आते।

तनिक और आगे बढ़ कर बाकर ने कहा—"सच कहता हूँ, चौधरी इस जैसी सुन्दर सांडनी मुझे सारी मण्डी में दिखाई नही दी।"

हर्ष से नन्दू का सीना दुगना हो गया, बोला—"आ एक ही बै, इह तो सगनी फुटरी है। हूँ तो इन्हें चारा फलूँसी नीरियां करूँ।"*

धीरे से बाकर ने पूछा—"बेचोगे इसे ?"

नन्दू ने कहा— 'बेचने लई तो मण्डी में आऊँ हूँ।"

"तो फिर बताओ कितने की दोगे ?" बाकर ने पूछा।

नन्दू ने नख से शिख तक बाकर पर एक निगाह डाली और हँसते हुए बोला—"तन्ने चाही जै का तेरे धनी वेई मोल लेसी ?"×

"मुझे चाहिए"—बाकर ने दृढ़ता से कहा।

---

*यह एक ही बस, यह तो सब से सुन्दर है, मैं इसे चारा और फलूँसो (जवार और मोठ) देता हूँ।

×तुझे चाहिए या अपने मालिक के लिए मोल ले रहा है ?

नन्दू ने उपेक्षा से सिर हिलाया। इस मजदूर की यह बिसात कि ऐसी सुन्दर साडनी मोल ले, बोला—"तू कि लेसी ?"

बाकर की जेब में पड़े हुए डेढ़ सौ के नोट जैसे बाहर उछल पड़ने को व्यग्र हो उठे, तनिक जोश के साथ उसने कहा—"तुम्हें इसमें क्या, कोई ले, तुम्हें अपनी कीमत से गरज है, तुम मोल बताओ।'

नन्दू उसके जीर्ण शीर्ण कपड़ों, घुटनों में उठे हुए तहमद और जैसे नूह के वक्त से भी पुराने जूते को देखते हुए कहा—"जा जा तू इसी-विसी साडनी खरीद ले, इसका मूल तो १६०) से कम नहीं। टालने की गरज आई, गो मोल तो आठ बीसी सूं घाट के नहीं।"*

एक निमिष के लिए बाकर के थके हुए व्यथित चेहरे पर आह्लाद की रेखा भी झलक उठी। उसे डर था कि चौधरी कहीं ऐसा मूल्य न बता दे, जो उसकी बिसात से बाहर हो, पर जब अपनी जबान से उसने १६०) बताए तो उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। १५०) तो उसके पास थे ही। यदि इतने पर भी चौधरी न माना, तो दस रुपये वह उधार कर लेगा। भाव-ताव तो उसे करना आता न था, झट से उसने डेढ़ सौ के नोट निकाले और नन्दू के फेंक दिए, और बोला—"गिन लो, इससे अधिक मेरे पास नहीं, अब आगे तुम्हारी मर्जी। नन्दू ने अन्य-मनस्कता से नोट गिनने आरंभ कर दिए, पर गिनती खत्म करते ही उसकी आँखें चमक उठीं। उसने तो बाकर को टालने के लिए ही मूल्य १६०) बता दिया था। नहीं मण्डी में अच्छी से अच्छी ढाची भी डेढ़ सौ में मिल जाती है और इसके तो १४०) पाने की भी उसने स्वप्न तक में कल्पना न की थी। पर शीघ्र ही मन के भावों को मन में छिपा कर और बाकर पर अहसान का बोझ लादते हुए नन्दू बोला—'साडनी तो मेरी दो सौ की है पण जा सागी मोल मिया तने दम

---

*जा-जा तू कोई ऐसी-वैसी साडनी खरीद ले, इसका मूल्य तो १६०) से कम नहीं। टालने की गरज से कहा।

छुडियां।"* और यह कहते-कहते उठकर उसने साडनी की रस्सी बाकर के हाथ में दे दी।

क्षण भर के लिए उस कठोर व्यक्ति का जी भर आया। यह साडनी उसके यहाँ ही पैदा हुई और पली थी आज पाल पोसकर उसे दूसरे के हाथ में सौंपते हुए उसके मन की कुछ ऐसी हालत हुई, जो लडकी को ससुराल भेजते समय पिता की होती है। जरा कांपती आवाज में, स्वर को तनिक नर्म करते हुए उसने कहा—"आ सांड सोरी रहेडी है, तूं इन्हें रेहड में ईंन गेर दई।" × ऐसे ही, जैसे श्वसुर दामाद से कह रहा हो—"मेरी लडकी लाडो पली है, देखना इसे कष्ट न होने देना।"

आह्लाद के परों पर उडते हुए बाकर ने कहा—"तुम जरा भी चिंता न करो, जान देकर पालूंगा।"

नन्दू ने नोट अंटी में सम्हालते हुए जैसे सूखे हुए गले को जरा तर करने के लिए घडे में से मिट्टी का प्याला भरा—मण्डी में चारों ओर धूल उड रही थी। शहरों की माल मण्डियों में भी, जहाँ बीसियों अस्थायी नलके लग जाते हैं और सारा-सारा दिन छिडकाव होता रहता है—धूल की कमी नहीं होती, फिर इस रेगिस्तान की मण्डी पर तो धूल का ही साम्राज्य था। गन्ने वाले की गंडेरियों पर, हलवाई के हलवे और जलेबियों पर और खोमचे वाले के दही पकौडी पर, सब जगह धूल का पूर्णाधिकार था। यहाँ वह सर्वव्यापक थी, सर्वशक्तिमान् थी। घडे का पानी टीन्डियों द्वारा शहर से लाया गया था, पर यहाँ आते आते कीचड हो गया था। नन्दू का ख्याल था कि निथरने पर पियेगा, पर गला कुछ सूख रहा था। एक घूँट में प्याले को ख़त्म करके नन्दू ने बाकर से भी पानी पीने के लिए कहा। बाकर

*सांडनी तो मेरी २००) की है, पर जा थारी कीमत से तुम्हें दस रुपए छोड दिए।

×यह सांडनी अच्छी तरह से रखी गई है, तू इसे यों ही मिट्टी में न रोल देना।

आया था तो उसे गजब की प्यास लगी हुई थी, पर अब उसे पानी पीने की फुर्सत कहां ? वह रात होने से पहले पहले गांव पहुंचना चाहता था। रस्सी की रस्सी पकड़े हुए वह धन को जैसे घीटता हुआ चल पड़ा।

बारह के दिन म बड़ी दर म एक सुन्दर और युवा डांची खरीदने की लालसा थी। जाति का वह कमीन था। उसके पूर्वज कुम्हारों का काम करते थे किन्तु उसके पिता ने अपना पैतृक काम छोड़कर मजदूरी करना ही शुरू कर दिया था और उसके बाद बाकर भी इसीसे अपना और अपने छोटे-से कुटुम्ब का पेट पालता आता था। वह काम अधिक करता हो, यह बात न थी, काम से उसने सदैव जी चुराया था, और चुराता भी क्यों न, जब कि उसकी पत्नी उससे दुगना काम करके उसके भार को बटाने और उसे आराम पहुँचाने के लिए मौजूद थी। कुटुम्ब बड़ा नहीं था—एक वह, एक उसकी पत्नी और नन्ही-सी बच्ची, फिर किसलिए वह जी हलकान करता ? पर क्रूर और बेपीर विधाता—उसने उसे उस विस्मृति से, सुख की उस नींद से जगाकर अपना उत्तरदायित्व महसूस करने पर बाधित कर दिया, उसे बता दिया कि जीवन में सुख नहीं, आराम नहीं, दुःख भी है परिश्रम भी है।

पांच वर्ष हुए उसकी वही आराम करानेवाली प्यारी पत्नी सुन्दर गुड़िया-सी लड़की को छोड़कर परलोक सिधार गई थी। मरते समय अपनी सारी करुणा को अपनी फीकी और श्री हीन आंखों में बटोर कर उसने बाकर से कहा था—'मेरी रजिया अब तुम्हारे हवाले है। उसे कष्ट न होने देना।' और उसी एक वाक्य ने बाकर के समस्त जीवन के रुख को पलट दिया था। उसकी मृत्यु के बाद ही वह अपनी विधवा बहन को उसके गांव से ले आया था और अपने आलस्य तथा प्रमाद को छोड़कर अपनी मृत पत्नी की अन्तिम अभिलाषा को पूरा करने में संलग्न हो गया था। यह सम्भव भी कैसे था कि अपनी पत्नी को—जिसे वह दिलोजान

म प्यार करता था, जिसके निधन का गम उसके हृदय के अज्ञात पर्दों तक छा गया था, जिसके बाद उम्र होने पर भी, धर्म की आज्ञा होने पर भी, लोगों के विवश करने पर भी उसने दूसरा विवाह न किया था। अपनी उसी प्यारी पत्नी की अन्तिम अभिलाषा की अवहेलना करता ?

वह दिन रात काम करता था ताकि अपनी मृत पत्नी की उस धरोहर को, अपनी उस नन्ही सी गुड़िया को, भाँति भाँति की चीजें लाकर प्रसन्न रख सके। जब भी कभी वह मण्डी से आता, तो नन्ही-सी रजिया उसकी टाँगो से लिपट जाती और अपनी बड़ी-बड़ी आँखें उसके गर्द से अटे हुए चेहरे पर जमाकर पूछती—"अब्बा, मेरे लिए क्या लाए हो ?" तो वह उसे अपनी गोद में ले लेता और कभी मिठाई और कभी खिलौनों से उसकी झोली भर देता। तब रजिया उसकी गोद से उतर जाती और अपनी सहेलियों को अपने खिलौने और मिठाई दिखाने के लिए भाग जाती। यही गुड़िया जब आठ साल की हुई तो एक दिन मचलकर अपने अब्बा से कहने लगी—"अब्बा हम तो डाची लेंगे, अब्बा हमें डाची ले दो।" भोली भाली निरीह बालिका उसे क्या मालूम कि वह एक विपन्न गरीब मजदूर की बेटी है, जिसके लिए डाची खरीदना तो दूर रहा, डाची की कल्पना करना भी गुनाह है। रूखी हँसी हँसकर बाकर ने उसे अपनी गोद में ले लिया और बोला— रज्जो, तू तो खुद डाची है। पर रजिया न मानी। उस दिन मशीरमल अपनी साँडनी पर चढ़कर अपनी छोटी लड़की को अपने आगे बिठाकर दो चार मजदूर लेने के लिए स्वभूमि-स्थित उस काठ में आये थे। तभी रजिया के नन्हे से मन में डाची पर सवार होने की प्रबल आकांक्षा पैदा हो उठी थी, और उसी दिन बाकर का रहा-सहा प्रमाद भी दूर हो गया था।

उसने रजिया को टाल तो दिया था, पर मन-ही-मन उसने प्रतिज्ञा कर ली थी कि वह अवश्य रजिया के लिए सुन्दर-सी डाची मोल लेगा। उसी इलाके में जहाँ उसकी आय की औसत साल भर में तीन

आना रोजाना भी न होती थी, अब आठ दस आने हो गई दूर दूर के गाँवों में अब वह मजदूरी करता। कटाई के दिनों में रात दिन काम करता, फसल काटता, दाने निकालता खलिहानों में अनाज भरता नीरा डाल कर भूसे के कूप बनाता, बिजाई के दिनों मे हल चलाता, पैनियाँ बनाता, बीज फेंकता। इन दिनों में उसे पाँच आने से लेकर आठ आने रोजाना तक मजूरी मिल जाती, जब कोई काम न होता तो प्रायः उठ कर आठ आठ कोस की मंजिल मार कर मण्डी जा पहुँचता और आठ दस आने की मजूरी करके ही वापिस लौटता। इन दिनों में वह रोज छः आने बचाता आ रहा था, इस नियम में उसने किसी प्रकार भी ढील न होने दी थी, उसे जैसे उन्माद सा हो गया था। बहन कहती "चाकर अब तो तुम बिलकुल ही बदल गए हो, पहले तो तुमने कभी ऐसी जी तोड़कर मेहनत न की थी।"

चाकर हँसता और कहता—"तुम चाहती हो मैं आयु भर निठल्ला बैठा रहूँ।"

बहन कहती—"निठल्ला बैठने को तो मैं नहीं कहती, पर सेहत गँवाकर धन इकट्ठा करने की सलाह भी मैं नहीं दे सकती।"

ऐसे अवसर पर सदैव चाकर के सामने उसकी मृत पत्नी का चित्र खिंच जाता, उसकी अन्तिम अभिलाषा उसके कानों में गूँज जाती। वह आँगन में खेलती हुई रजिया पर एक स्नेहभरी दृष्टि डालता और विषाद से मुस्कराकर फिर अपने काम में लग जाता और आज डेढ़ वर्ष की कड़ी मशक्कत के बाद, वह अपनी संचित अभिलाषा को पूरा कर सका था।

उसके हाथ में साँडनी की रस्सी थी और नहर के किनारे किनारे वह चला जा रहा था।

शाम का वक्त था, पश्चिम की ओर डूबते सूरज की किरणें धरती को सोने का अन्तिम दान कर रही थीं। वायु में ठण्डक आ गई थी और कहीं दूर खेतों में टिटहरी 'टिहूँ टिहूँ' कर रही थी। चाकर के मन में अतीत की सब बातें एक-एक करके आ रही थीं। इधर-उधर कभी कोई किसान अपने ऊँट पर सवार जैसे फुदकता हुआ निकल जाता था और

कभी-कभी खेतों से वापिस आने वाले किसानों के लम्बे घर में रखे हुए घास-पत्ते के गट्ठों पर बैठे बैलों को पुचकारते, किसी गीत का एक-आध बन्द गाते, या छकड़े के पीछे बँधे हुए चुपचाप चले आने वाले ऊँटों की थूथनियों से खेलते चले जाते थे।

बाकर ने स्वप्न से जागते हुए पश्चिम की ओर अस्त होते हुए सूरज की ओर देखा, फिर सामने की ओर शून्य में नजर दौड़ाई—उसका गाँव अभी बड़ी दूर था। पीछे की ओर हर्ष से देखकर और शान्त रूप से चली आने वाली साँडनी को प्यार से पुचकार कर वह और भी तेजी से चलने लगा। कहीं उसके पहुँचने से पहले रजिया सो न जाय।

मशीरमल की काट नजर आने लगी। यहाँ से उसका गाँव समीप ही था। यही कोई दो कोस। बाकर की चाल धीमी हो गई और इसके साथ ही कल्पना की देवी, अपनी रंग बिरंगी तूलिका से उसके मस्तिष्क के चित्रपट पर तरह तरह की तस्वीरें बनाने लगी। बाकर ने देखा—उसके घर पहुँचते ही नन्ही रजिया, आह्लाद से नाचकर उसकी टाँगों से लिपट गई है और फिर डाची को देखकर उसकी बड़ी-बड़ी आँखें आश्चर्य और उल्लास से भर गई हैं। फिर उसने देखा—वह रजिया को आगे बिठाए, सरकारी खाले (छोटी नहर) के किनारे किनारे डाची पर भागा जा रहा है। शाम का वक्त है ठंडी-ठंडी हवा चल रही है और कभी कोई पहाड़ी कौआ अपने बड़े बड़े परों को फैलाए और अपनी मोटी आवाज से दो एक बार काँव-काँव करके ऊपर उड़ा चला जाता है। रजिया की खुशी का वार-पार नहीं है। वह जैसे हवाई जहाज में उड़ी जा रही है, फिर उसके सामने आया कि वह रजिया के लिए महाबल नगर की मंडी में खड़ा है। नन्हीं रजिया मानो भौचक्की सी है, हैरान और आश्चर्यान्वित सी। कई ओर अनाज के इन बड़े बड़े ढेरों, अनगिनत छकड़ों और हैरान कर देनेवाली चीजों को देख रही है। बाकर साह्लाद उसे सबकी कैफियत दे रहा है। एक दुकान पर ग्रामोफोन बजने लगता है। बाकर रजिया को वहाँ से ले जाता है। लकड़ी के इस डिब्बे

में किस तरह गाना निकल रहा है, कौन इसमें छिपा गा रहा है—यह सब बातें रजिया की समझ में नहीं आतीं और यह सब जानने के लिए उसके मन में जो कौतूहल है वह उसकी आँखों में टपका पड़ता है।

वह अपनी कल्पना में मग्न काट के पास से गुजरा जा रहा था कि अचानक कुछ ध्यान आ जाने से वह रुका और काट में दाखिल हुआ।

मसीरमल की काट भी कोई बड़ा गाँव न था। इधर के सब गाँव ऐसे ही है। ज्यादा हुए तो तीस छप्पर हो गए। कड़ियों की छत का या पक्की ईंटों का मकान इस इलाके में अभी नहीं। खुद बाकर की काट में पन्द्रह घर थे—पर क्या झुग्गियाँ थीं। मसीरमल की काट ऐसी बीस पच्चीस झुग्गियों की बस्ती थी, केवल मसीरमल का निवासस्थान कच्ची ईंटों से बना था, पर छत उस पर भी छप्पर की ही थी। नानक बढ़ई की झुग्गी के सामने वह रुका। मण्डी जाने से पहले वह यहाँ डाची का गदरा (काठ) बनाने के लिए दे गया था। उसे ख्याल आया कि यदि रजिया ने साँडनी पर चढ़ने की जिद की तो वह उसे कैसे टाल सकेगा। इस विचार से वह पीछे मुड़ आया था। उसने नानक को दो-एक आवाजें दीं, अन्दर से शायद उसकी पत्नी ने उत्तर दिया—"घर में नहीं हैं, मण्डी गये हैं।"

बाकर का दिल बैठ गया। वह क्या करे, यह न सोच सका, नानक यदि मण्डी गया है, तो गदरा क्या खाक बनाकर गया होगा, लेकिन फिर उसने सोचा—शायद बनाकर रख गया हो, इससे उसे कुछ सान्त्वना मिली। उसने फिर पूछा—"मैं साँडनी का पलान (गदरा) बनाने के लिए दे गया था। वह बना या नहीं ??"

जवाब मिला—"हमें नहीं मालूम।"

बाकर का आधा उल्लास जाता रहा। बिना गदरे के वह डाची को क्या लेकर जाय। नानक होता तो उसका गदरा चाहे न बना सही, कोई दूसरा ही उससे माँगकर ले जाता। इस ख्याल के आते ही उसने सोचा चलो मसीरमल से माँग लें। उनके तो इतने ऊँट रहते हैं, कोई

न कोई पुराना पलान होगा ही। अभी उसी से काम चला लेंगे, तब तक नानक गदरा तैयार कर देगा। यह सोचकर मशीरमल के घर की ओर चल पड़ा।

अपनी मुलाजमत के दिनों में मशीरमल महोदय ने काफी धन उपार्जित किया था। जब इधर नहर निकली तो उन्होंने अपने असर और रसूख से रियासत की जमीन ही में कौड़ियों के मोल कई मुरब्बे जमीन ले ली थी। अब रिटायर होकर यहीं आ रहे थे। राहक (मुजोरे) रख हुए थे, आय खूब थी और मजे से बसर हो रही थी। अपनी चौपाल में एक तख्तपोश पर बैठे वे हुक्का पी रहे थे—सिर पर सफेद साफा, गले में सफेद कमीज, उस पर सफेद जाकेट और कमर में दूध-जैसे रङ्ग का तहमद। गर्द से अटे हुए बाकर को साँडनी की रस्सी पकड़े आते देखकर उन्होंने पूछा—"कहो बाकर किधर से आ रहे हो ?"

बाकर ने झुककर सलाम करते हुए कहा—"मण्डी से आ रहा हूँ मालिक।

"यह डाची किसकी है ?'

मेरी है मालिक अभी मण्डी से ला रहा हूँ ?"

कितने की लाये हो।

बाकर ने कहा, यह द आठ बीसी की लाया हूँ, उसके ख्याल में ऐसी सुन्दर डाची, दो सौ को भी सस्ती थी, पर मन न माना, बोला—"हुजूर माँगता तो एक सौ साठ था, पर सात बीसी में ही ले आया हूँ ?'

मशीरमल ने एक नजर डाची पर डाली। वे खुद देर से एक सुन्दर-सी डाची अपनी सवारी के लिए लेना चाहते थे। उनकी डाची थी तो, पर पिछले वर्ष उसे सीमक हो गया था और यद्यपि नील इत्यादि देने से उसका रोग दूर हो गया था पर उसकी चाल में वह मस्ती, यह लचक न रही थी। यह उनकी नजरों में बस गई—क्या सुन्दर और सुडौल अङ्ग

है क्या सफेदी मायल भूरा-भूरा रङ्ग है। क्या लचलचाती लम्बी गर्दन है। बोले—"चलो हमसे आठ बीसी ले लो, हमें डाची की जरूरत है। दस तुम्हारी मेहनत के रहे।"

बाक़र ने फीकी हँसी के साथ कहा—"हजूर अभी तो मेरा चाव भी पूरा नहीं हुआ।"

× × ×

मशीरमल उठकर डाची की गर्दन पर हाथ फेरने लगा—वाह क्या असील जानवर है? बोले—"चलो पाँच और ले लेना।"

और उन्होंने आवाज दी—"नूरे! अरे ओ नूरे!"

नौकर नौहरे में बैठा भैंसों के लिये पट्ठे कतर रहा था। गँडासा लिये ही भागा चला आया।

मशीरमल ने कहा—"यह डाची ले जाकर बाँध लो? एक सौ पैंसठ रुपये में, कहो कैसी है?"

नूरे ने हत-बुद्धि से खड़े बाक़र के हाथ से रस्सी ले ली और नख से शिख तक एक नजर डाची पर डालकर बोला—"खूब जानवर है।" और कहकर नौहरे की ओर चल पड़ा।

तब मशीरमल ने अंटी से साठ रुपये के नोट निकालकर बाक़र के हाथ में देते हुए मुसकराकर कहा—"अभी एक गाहक देकर गया है, शायद तुम्हारी किस्मत ही के थे। अभी यह रखो, बाकी भी एक दो महीने तक पहुँचा देंगे। हो सकता है, तुम्हारी किस्मत से पहले ही आ जायें!" और बिना कोई जवाब सुने नौहरे की ओर चल पड़े।

नूर फिर चारा कतरने लगा था। दूर ही से उसे आवाज देकर उन्होंने कहा—"भैंस का चारा रहने दो, पहले डाची के लिए गवारे को नीरा कर डालो, भूखी मालूम होती है।" और पास जाकर साँडनी की गर्दन सहलाने लगे।

कृष्ण पक्ष का चाँद अभी उदय नहीं हुआ था। विजन में चारों ओर सोहामा छा रहा था। सिर पर दो एक तारे निकल आये थे और दूर बबूल और आकाट के वृक्ष बड़े बड़े काले स्याह धब्बे बन रहे थे। अपनी बाट में जरा दूर फासले को एक झाड़ी के नीचे बाकर बैठा था, पशुओं के गले में बंधी हुई घंटियों की आवाज जैसे अनवरत क्रन्दन बन कर उसके कानों में आ रही थी। बाकर के हाथ में साठ रुपये के नोट बेपरवाही से लटक रहे थे और अपनी झोंपड़ी में आने वाली प्रकाश की क्षीण रेखा को निर्निमेष देखता हुआ वह इस बात की प्रतीक्षा कर रहा था कि वह रेखा बुझ जाय, रजिया सो जाय, तब वह चुपचाप अपने घर में दाखिल हो।

श्रीमती होमवती देवी

१०. माँ

[१]

बड़ा भोला भाला, स्वस्थ और आकर्षक बालक था वह। आयु होगी लगभग दो-ढाई वर्ष की, जब उसकी माँ मरी थी। जिस समय शकुन्तला की अर्थी सजाई जा रही थी, अनुराग कौतूहल से नौकर की गोद में चढ़ा देख रहा था। तभी दो एक बड़े-बूढ़ों ने कहा—"इसे अलग ले जा रे, बच्चा, जी में दहल जायगा।" और तब उसका नौकर सिरिया उसे कलेजे से चिपकाए दूर कूएँ की जगत पर बैठा आँसू बहाता रहा—'मालकिन क्या थी देवी का स्वरूप और अन्नपूर्णा का मन पाया था। ऐसी क्या कोई सात जनम में भी मिल सकती है इन्हें। इतने बड़े घरकी बेटी और मिजाज नाम को भी नहीं था।' सिरिया की बात के समर्थन में मेहतर ने सिर हिला दिया और फिर मृतक के कपड़े, खाट बिस्तर आदि सहेजने में लग गया।

तेरह दिन तक घर में शोक का साम्राज्य बना रहा विशेष रूप से तीन दिन तक अविरल रोना पीटना चलता रहा। फिर क्रमशः वातावरण कुछ शान्त होने लगा। बहू की माँ, बहन, भावज सब छाती पीट-पीट कर थक गईं; पर जाने वाला रुकता थोड़े ही है। सास, ससुर, ननद और नाते रिश्ते के सभी अपना अपना कर्तव्य पालन करके चुप बैठ गए, किन्तु इससे क्या बना? वह तो सदा के लिए सो गई—बच्चे से माँ बिछुड़ गई।

बाबू कृपाकर के लिए तो एक क्या अनेक स्त्रियाँ थीं। स्त्री के मरने के साथ-ही-साथ रिश्ते आने लगे, बल्कि बहुत से लड़की वालों ने

तो उसकी बीमारी की हालत मे ही निगाह ठहरा ली थी। जब तेरहवी के ब्राह्मण जीम चुके, तभी कृपाशकर के पिता ने लडके की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"बहू क्या थी बेटा, लक्ष्मी थी, पर मरना-जीना तो अपने हाथ की बात नही। हमे ही देखो, तीन तीन शादियाँ किए बैठे हैं—एक तुम्हारी माँ से पहले और एक बाद मे। क्या किया जाय, हरि की इच्छा। अब तुम सोच लो, किस लडकी को कितने नम्बर देते हो।'

कृपाशंकर ने अपने भावसे कहा—"अभी जल्दी ही क्या है, बाबूजी? न जाने बच्चे को कोई कैसे रखे।"

वे बोले—"बच्चे तो सब रहते ही हैं भाई! आखिर तुम्ह भी तो किसी ने रखा ही था। तुम्हारी इतनी ही उम्र रही होगी बस, जब माँ मरी थी।"

कृपाशकर के सामने दो युग पीछे का ससार घूमने लगा। किस प्रकार उसे मार मार कर कपडे धोने के लिए बाध्य किया जाता था! पिता की आँखो में भी खून उतर आता था। उसे देख देखकर कितनी शिकायते प्रतिदिन सामने खडी खाती रहती थी। उमे गिन गिनकर रोटियाँ मिलती थी खाने को। गिन गिनकर कपडे दिए जाते थे पहनने को। और तब उन्होने सहसा कह दिया—"मै शादी नही करूँगा।

पर बाबू बनवारीलाल पुराने मँजे हुए वकीलो म से थे। उनकी तीव्र दृष्टि ससार का कोना कोना छाने हुए थी। लडके को भी वकालत पास कराके उन्होने अपनी दूरदर्शिताका परिचय दिया था। यद्यपि परिवार तो छोटा ही था—दो जने स्वय और दो वे लडके कृपाशकर और दयाशकर पर रुपया कमाने मे वे इतने दक्ष थे कि कीचड से भी पैसा निकाल ले। उन्होने अथक परिश्रम करके अपने ही बाहु बल से यह घर बनाया है। लडके के मुख पर दृष्टि गड़ाकर वे बोले—"बावला हो गया है, कामिनी और कचन का मोह तो बडे-बडे ऋषि भी नहीं छोड सके, भैया। हम जैसो की क्या बात है? फिर कसूर-बिगाड पर अपनी माँ क्या डाटती मारती नही है? अच्छी लड़की होगी, तो इसे अपने बच्चे के समान रखेगी। फिर हम

पहले ही सब बातें ठहरा लेंगे। और हम तो मौजूद है। हमारे पास रहेगा यह। बस, तय कर लो जल्दी, क्योंकि देर करने से रुला खुला कूटा कचरा ही हाथ लगता है। देखो, मिक्का पसारी की लडकी देखने मे भी बुरी नहीं सुनते, और कहता है, शादी मे कम-से-कम आठ-दस हजार रुपया खर्च करेगा। चाहे पाँच नकद ही ले लो। दूसरा रिश्ता भट्टे वालो का भी अच्छा है। लडकी इसकी ज्यादा अच्छी सुनते है। कुछ पढी लिखी भी है। खानदान भी अच्छा है पर देना लेना तो ऐसा ही रहेगा। नाम बडे और दर्शन थोडे। छ बहने हैं तय कर लो, फिर मुझे एक मुकदमे के चक्कर में बाहर जाना है। ' यह कहकर बडे वकील साहब बाहर चबूतरे पर टहलने लगे और छोटे वकील बाबू नई गृहस्थी की उलझन को सुलझाने मे व्यस्त हो गए। तभी अनुराग ने आकर घर का कोना-कोना ढूँढना शुरू कर दिया। शायद वह अपनी माँ की तलाश मे था। फिर जहाँ रोगिणी का पलग बिछा रहता था, वहीं खडा होकर वह रो पडा—"अम्माँ अम्माँ।' बाबा ने गोदी मे उठाकर उसे दुलारते हुए कहा—"अब तुम्हारी अम्माँ को जल्दी ही लाने की बात सोच रहे हैं, बेटा।"

[२]

महीना पूरा होते होते ही कृपाशङ्कर की माँ मिलाई ले आई। वर ने दूसरी लडकी ज्यादा पसद की। पसारी की लडकी तो जरा पसन्द नही आई। विवाह की तारीख तय हो गई। केवल आठ ही दिन शादी के रह गए। मृत्यु का सन्नाटा विवाह की धूम-धाम मे बदल गया। आस-पास के रिश्तेदारो को पत्र लिखे जाने लगे। घी, आटा, दाल, मेवा, मेवा, मिसरी आदि सामान जुटाने का प्रबन्ध होने लगा। कलावे भी रङ्गने को दे दिए गए, चूडियो के जोडे बँधने लगे। पिछली बहू के जेवर निखारने के लिए सुनार के यहाँ भेज दिए गए। आखिर वर की दूसरी शादी सही, पर कन्या की तो पहली ठहरी। गुडिया-गुड्डा के विवाह मे भी तो चार चीजें जुटानी ही पडती हैं।

कृपाशङ्कर की मां दो-चार भारी साड़ियां और गहने दयाशङ्कर की बहू के लिए रोक कर विवाह के काम में तन-मन से जुट गई। 'आज न सही, दस साल बाद छोटे का विवाह तो उन्हें करना ही है। इस मँहगी के जमाने में कौन इतना जेवर-कपड़ा चढ़ाता है? फिर यह तो दूसरी शादी ठहरी।" यही सब दूर की बातें सोचकर लगन के चढ़ावे में भी इस बार इन्होंने दो के बजाय एक ही अँगूठी भेजने का निश्चय किया। कल लगन आयगा, परसों सामान जायगा और फिर थान तेल मढ़ा सब होगा। चाहे जो भी हो, सगुन के काम तो करने ही पड़ेंगे। मन-ही-मन हिसाब जोड़कर उन्होंने पति से सम्मति ले कर तय किया कि इस विवाह में ज्यादा-से-ज्यादा पाँच सौ रुपए खर्च करने चाहिए बस। लड़की वाले ने मिनाई में कुल मिलाकर साढ़े सात सौ रुपये नकद और घड़ी, अँगूठी, बर्तन वगैरह दिये हैं। समाई तो अच्छी ही करेगा। फिर बाद में कौन देना है? देना-लेना तो भाँवरें पड़ने से पहले तक ही रहना है, फिर तो सब लड़की वाले अँगूठा ही दिखाते हैं इसलिए देख-भालकर ही खर्च करना चाहिए।

अनुराग के लिए भी नए कपड़े और जूता का इन्तजाम करना था। वह बहुत खुश था। विवाह की चहल-पहल में जैसे उसका भी पुराना स्मरण भग होने लगा। जिस दिन कृपाशङ्कर को तेल चढ़ाया गया, वह भी चौकी पर आ बैठा और तेल मलवाने के लिए मचल उठा। दादी ने सहानुभूति दिखाते हुए कहा—"इसके ऊपर भी दो छींटे डाल कर बहला दो, नहीं तो रो पड़ेगा और फिर चुप करना मुश्किल हो जायगा।' सिरिया ने झट आकर उसे गोदी में उठा लिया। "आओ भइया, पतङ्ग उड़ायेंगे।" कहकर वह उसे छतपर ले गया पर अनुराग की रट लगी थी—"हम भी कङ्गना बँधवायेंगे।"

सिरिया के पास ही बैठी महरी समाला साफ कर रही थी, बोली —"किसका ब्याह है, भइया?"

अनुराग ने तुरन्त उत्तर दिया—"बाबूजी का।"

पता नहीं, नीचे वालों ने बच्चे की बात सुनी या नहीं, पर ऊपर वाले स्तब्ध रह गये और नमी उनकी आँखों से आँसू टपक कर भू पर बिखर गए।

[३]

दीवार पर गेरू का थापा और उसके सामने जो मंगल घट रखा गया था, उसी के सम्मुख वर-वधू को बैठा कर पूजन कराया जा रहा था और अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुसार आई-गई स्त्रियां न्योछावर कर के मां जी के हाथ पैसों से भर दे रही थी। कृपाशङ्कर की बाईं ओर बैठी सोलह साल की भामा नववधू के रूप में घूँघट में ही मुस्करा रही थी। रूप जैसे सँभाले सँभल नहीं रहा था। सभी ने उसके रूप की प्रशंसा की—"और चाहे जो हो पर पहली बहू से देखने में अच्छी है।"

कृपाशङ्कर का मन भी अपनी परख पर फूल उठा। बोले—"खुद जो पसन्द की है मैंने।"

मां ने अभिमान से कहा—"और वह बाप की पसन्द थी। आगे चलकर पता लगेगा कि किसकी पसन्द अच्छी रही। अब उस बेचारी का क्या जिक्र, आज पूरा सवा महीना हो गया।"

प्रसङ्ग को बदलता देखकर कृपाशङ्कर ने गठबन्धन का दुपट्टा कन्धे से उतारकर नीचे रख दिया। "अच्छा, अब मैं उठ जाऊँ न ?" कहते हुए वे उठने को उद्यत हुए। तभी नाते की एक भौजाई ने कहा—"अभी तो मुँह जूठा कराना है। ठहरो, भाग नहीं सकते"। बुरा न मानो लालाजी; छोटे लाला के लिए भी तुमसे ही बहू पसन्द कराई जायगी। सचमुच सैंकड़ों में एक है ..!" अपने हाथ-पैरों पर एक गम्भीर दृष्टि डालते हुए युवती लड्डू-बताशे और पान लेने चली गई। फिर वातावरण में एक रङ्गीनी-सी छा गई। कृपाशङ्कर ने धीरे से कहा—"तुम क्या बुरी हो ?"

युवती ने तनिक संकोच के साथ देवर के सामने तश्तरी रख दी और

वहू का भी हाथ थामकर तश्तरी मे रख दिया। इतने ही में अनुराग की आवाज सुनाई दी—"बाबूजी, बाबूजी कहाँ हैं, हम बन्दर का तमाशा देखेंगे।" और आवाज के साथ ही वह भागा भागा आकर कमरे मे दाखिल हो गया। वहाँ आते ही जैसे वह सब कुछ भूलकर पिता से गजभर दूर खडा का खडा ही रह गया। दादी ने एक इकन्नी उसकी ओर बढाते हुए कहा—"जा, करा ले बन्दर का तमाशा।" पर उसने जैसे उनकी बात ही नही सुनी, इकन्नी लेना तो दूर रहा।

बुआ ने उसे गोद में उठाकर पूछा—"तुमने वहू देखी, भैया ?"

अनुराग ने सिर हिलाकर उत्तर दिया—'नही।"

"देखोगे ?"—बुआ ने फिर पूछा।

बालक ने सिर हिला कर कहा—"हाँ।"

लडकी ने नई लडकी के घुटने पर उसे बिठाकर बहू का घूँघट थोडा ऊपर करते हुए कहा—'लो, देखो।"

अनुराग ने थोडा झुककर घूँघट मे कुछ देख लिया और खडा हो गया। ताई ने पूछा—"यह किसकी बहू है भइया ?"

अनुराग ने सहसा उत्तर दिया—"बाबूजी की।"

सबके खिले हुए चेहरे उतर गए। वे न जाने किस उलझन मे आगए थे। कृपाशङ्कर भी उठ खडे हुए और बच्चे की उँगली पकडकर बोले—"चलो, बाहर बन्दर का तमाशा देखेंगे।"

लडके की शादी करके बाबू बनवारीलाल ने जैसे गङ्गा नहा ली हो। उन्होने वकालत छोडकर कानपुर मे ठेकेदारी का काम शुरू कर दिया। वे छोटे लडके को लेकर वहाँ चले गए। अनुराग को भी वे साथ ले जाना चाहते थे। पर फिर उन्होने सोचा—यहाँ रहकर माँ से हिल मिल जायगा, पास रहने से माँ की ममता भी इसमे होगी।

भाभा ने आते ही घर गृहस्थी सम्भाली। अनुराग भी जैसे धीरे धीरे सब कुछ समझने की चेष्टा करने लगा। अब वह उतना हँसता नही और

न पहले जैसा शोर ही मचाता है। वह एक दम मानो साठ साल का बूढ़ा बन गया है—बहुत गम्भीर और शान्त। पड़ोस के जिन बच्चों में वह नित्य खेला करता था, अब कभी उनके पास जाता भी है, तो चुपचाप किवाड़ के पीछे या दीवार की ओट में दरवाजे पर ही ठिठक कर खड़ा रह जाता है। बहुत बुलाने पर कभी आ जाता है और कभी कुछ भी घर से निकलता ही नहीं। अक्सर उसके रोने की आवाज सुनकर मुहल्ले के बच्चे उसके घर के आगे जा खड़े होते हैं और उसे आवाजें लगाते हैं, पर जब से नई मुहिरी आई है इस घर के अन्दर जाने की वे हिम्मत नहीं करते।

इसी प्रकार धीरे धीरे दो वर्ष बीत गए। अचानक एक दिन सुना वकील साहब के घर लड़का हुआ है, उसकी आज छठी है। ढोलक और मँजीरों की ध्वनि से सारा मुहल्ला गूँज उठा। कृपाशंकर के दोस्त दावत का तकाजा करने लगे, नाइन और कहारिन कड़े की फरमाइश करने लगी और महतरानी नई धोती के लिए भनकने लगी। जिसे देखो, वही उनके सिर था। पर कोई परेशानी की बात इसलिए सामने नहीं थी कि सभी चीजें मँहगी होने के अलावा कंट्रोल के अन्तर्गत थी, दावतें तो कभी की बन्द हो चुकी थी। मँहगा होने के अलावा कपड़ा मिलना ही नहीं था। खाना अपने ही पेट को काफी नहीं मिलता, फिर किसी दूसरे को क्या खाक खिलाया जाय?

लेकिन इतना हेर फेर अवश्य हो गया कि पड़ोस की दो चार स्त्रियों का आना जाना इस नए बच्चे के जन्म से शुरू हो गया। कभी-कभी कोई बच्चा भी जा सकता होता। अनुराग भी अब थोड़ा-थोड़ा घर से निकलने लगा। फिर ऐसा हो गया कि दिन-दिन भर घर आना ही न था। कहीं किसी के घर खा लेना और खेलना रहना। शाम को जब कृपाशंकर के कचहरी से आने का समय होता, तब उसकी ढुँढाई होती और नया नौकर टीका उसे खींच तान कर कभी दूध पीने के बहाने और कभी अनार-सन्तरे या खरबूजे खाने का लालच दिखाकर घर ले जाता।

अब वह पूरे चार वर्ष का हो चुका था, पर बोलता अब भी बहुत

कम था। उसकी गम्भीरता दिन दिन बढ़ती जाती थी। जब कभी उसके कपड़े वगैरह बदले जाते, तब वह दुबला पतला होने पर भी और सुन्दर लगने लगता था। उसे परिचित-अपरिचित सभी प्यार करते थे। सहानुभूति अमूल्य होने पर भी उसका मूल्य दीनता से बढ़कर क्या हो सकता है।

[४]

उस दिन होली का दिन था। अनुराग की अम्मा ने सन्तोष की बुआ को बुलावा भेजा—"जरा कहानी सुनाकर तागा बँधवा देगी।" वे पहले तो सोचती ही रह गईं—यह तीसरी होली है, इसने पिछले दो वर्षों से तागा क्यों नहीं बाँधा ? आखिर लड़का तो आगे था ही-अपनी या पहली का। पर करती भी क्या ? चली गईं। तब तक एक सँराई में आटा और गुड़ रखकर गृहिणीने कच्चे सूत की पिंडियाँ उनके सामने रख दी। वे तागा पूरते-पूरते कहानी सुनाने लगी—"एक राजा था। उसके नगर में ऐसा नियम था कि जब तक नर बलि न चढ़ाई जाय, तब तक मिट्टी के बर्तनों का आवा पकता ही न था। उसी शहर में एक बुढ़िया रहती थी। उसके एक ही लड़का था। होली का व्रत रखकर उसने तागा बाँधा और पूजन किया। शाम को राजा के सिपाही आये और उसके लड़के को पकड़ कर ले गए। अब उसी की बारी थी। रोती बिलखती बुढ़िया ने बेटे को विदा किया और जो के दस दाने उसे देकर कहा—'जा भगवान् मेरे इन कच्चे धागे की लाज रक्खेंगे।' हमेशा आवा ६ महीने में उतारा जाता था और जिसे बर्तनों के साथ चिना जाता था, उसकी हड्डियाँ तब भस्म हो जाती थीं, पर अबकी बार तीन ही दिन में आवा पक गया और बुढ़िया का बेटा हँसता कूदता आवे से बाहर निकल आया। नगर के लोगों ने इसकी बड़ी चर्चा हुई कि बुढ़िया जादूगरनी है और जादू के जोर से उसने अपने बच्चे को बचा लिया। बुढ़िया ने अपने होली के तागे और व्रत की महिमा का वर्णन करते हुए कहा—"नगर की सभी स्त्रियों को, जो लड़के

की माँ ही यह तागा खींचना चाहिए।' और तभी से यह रिवाज चला आ रहा है।

कहानी पूरी करते हुए सन्तोष की बुआ ने कृपाशङ्कर की बहू से कहा—"तुमने पारमाल तो तागा बाँधा नहीं ?"

नई गृहणी ने गोद के शिशु की ओर इशारा करते हुए कहा—तब यह कहाँ था ?'

सन्तोष की बुआ को जैसे अब आगे कहने के लिए कोई बात नहीं रह गई। इतना स्पष्ट और सम्पूर्ण उत्तर पाकर वे खड़ी हो गईं। बहू ने उनके पैर छुए। उन्होंने 'सतपूती हो' कहकर घर का रास्ता लिया।

उसी रात अनुराग को बड़ा तेज बुखार चढ़ा और बुखार के साथ ही उसके प्रलाप की मात्रा भी बढ़ती गई। कृपाशङ्कर बड़ी परेशानी के साथ कभी उसकी नाड़ी टटोलते और कभी दिल की धड़कन देखते। डॉक्टर सावधानी से उसकी देखभाल करने का आदेश दे और नुस्खा लिखकर चले गए। नई माँ गोद के बच्चे को कलेजे से चिपकाए आँगन में खटोले पर पड़ी खर्राटे ले रही थी। अनुराग बराबर बक रहा था —'अरे अ यह देखो, किसने किसने सिगरेट जला दी जाने! मेरा कुर्त्ता जल गया 'जल गया जल गया! बाबूजी जी, जल्दी आ जाओ ' इक्का खड़ा है मैं भी जाऊँगा। '

यह सब सुनकर पड़ोसियों तक का दिल बैठा जा रहा था। कृपाशङ्कर ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"अनुराग, क्या बात है, बेटा! सो जाओ, तुमने तो परेशान कर रखा है!"

और अनुराग बराबर बकता जा रहा था—"अम्माँ अम्माँ! मुझे गोदी में ले लो। वह देखो, तोता उड़ जायगा। बन्द करो बन्द करो। मैं नहाऊँगा। रोटी रोटी जल्दी आओ अम्माँ अम्माँ!' कहते कहते वह सहसा मौन हो गया।

कृपाशङ्कर ने उसका माथा छूकर देखा, पसीना आ रहा है, बुखार भी अब कम मालूम होता है। पर यह क्या? एकदम निढाल और निश्चल सा हुआ जा रहा है अनुराग। पुरुष का हृदय भी कातर हो उठा। कृपाशङ्कर ने पलङ्ग की पाटी पर अपना सिर दे मारा—"तुझे क्या हो गया, अनुराग!

बच्चे के होठ हिले—"अ म्मां आं आं!"

कृपाशङ्कर ने आँगन में पड़ी गृहणी को झकझोर कर कहा—"उठो, देखो तो अनुराग कब से अम्मां अम्मां पुकार रहा है? अरे भामा, उस की हालत बड़ी खराब होती जा रही है। तुम जरा उसे देखो। मैं डॉक्टर के यहाँ जाऊँ।"

पर युवती जैसे अपने मीने स्वप्नों को भंग नहीं करना चाहती थी। बोली— सोने दो, मेरे पेट में बड़ा दर्द है।"

कृपाशङ्कर ठगे हुए से स्तम्भित-खड़े-खड़े सोच रहे थे—"मां? मां है यह? हां, अम्मा। पर अनुराग की नहीं।" और फिर सहसा उनकी आंखें युवती के पास खड़े हुए शिशु पर जाकर ठहर गईं।

श्री विष्णुप्रभाकर

११. आपरेशन

डा० नागेश उस दिन बड़ी उलझन में पड़ गये। वह सिविल अस्पताल के प्रसिद्ध सर्जन थे। कहते हैं कि उनका हाथ लगने पर रोगी की चीख पुकार उसी प्रकार शान्त हो जाती थी, जिस प्रकार मां को देखते ही शिशु का क्रन्दन बन्द हो जाता है। जितना भयंकर आपरेशन होता था, उनकी मुस्कान उतनी ही मधुर होती थी। कह सकते हैं कि उनकी हँसी कठिन परीक्षा के अवसर पर फूटती थी पर उस दिन जैसे सलवटे खुलने के स्थान पर और गहरी हो उठी। जैसे जैसे वह प्यार के हाथों से उन्हें दूर करने की कोशिश करते थे, वैसे-वैसे वे और भी मुखर हो जाती थीं।

वह तब काम समाप्त करके लौटने की बात सोच रहे थे। कई दिन से उन्हें कोई बड़ा आपरेशन नहीं करना पड़ा था। छोटे छोटे आपरेशन उनके सहकारी कर लेते थे, इसलिए अक्सर उनको छुट्टी रहती थी। लेकिन उस दिन जैसे ही उन्होंने अपने सहकारी से लौटने की बात कही दूसरे साथी ने आकर कहा - "डाक्टर! शीघ्र आइये।"

डॉक्टर ने पूछा—"क्यों क्या है?"

"एक अद्भुत केस है।"

"आपरेशन का?"

"जी हां।"

"कोई घायल है?"

"जी नहीं, वह पूर्ण स्वस्थ है।"

ता ?'

वह चाहता है कि मस्तिष्क का आपरेशन कर दिया जाय।'

वह चल रहे थे और बातें कर रहे थे। मस्तिष्क के आपरेशन की बात सुनकर वह हठात् ठिठके, पूछा—'क्या तुम ठीक कह रहे हो ?"

साथी ने उसी स्वाभाविकता से कहा—'देखने में उसे कोई रोग नहीं जान पड़ता। वह एक साधारण स्वस्थ आदमी है सुशिक्षित है और देश के लिये जेल हो आया है ?"

सम्भवत पागल है ?"

शायद! उसकी बातों से मन पर यही असर पड़ता है, पर कभी-कभी वह इस प्रकार बातें करता है कि उसे पागल मानते दुःख होता है।"

डा० नागेश मुस्कराये, बोले—"तब वह निस्सन्देह पागल है। दुःख सदा पागलपन पर ही होता है।' और वह मन्त्रणा करते भवन के द्वार पर आ गये। साथी ने आगे बढ़कर किवाड़ खोले। डा० नागेश ने देखा—सामने कुर्सी पर बैठा हुआ एक व्यक्ति उठकर खड़ा हो गया है। वह एक साधारण व्यक्ति है। चाल-ढाल बताती है वह सुसंस्कृत है क्योंकि उसने जिस विनम्रता से प्रणाम किया वह विरले जन में पाई जाती है। वह मुस्कराया भी और तब तक नहीं बैठा, जब तक डा० नागेश अपनी कुर्सी पर नहीं पहुंच गये। यद्यपि उसकी आँखें कुछ अस्वाभाविक रूप से चंचल थी पर वह बोलने को विशेष उत्सुक नहीं था। उसकी पोशाक ठेठ शहर की थी। खादी टोपी, कुरता और पायजामा, पैरों में सैंडिल थी और जेब में कोई पेन जिसे एकदम पहचानना कठिन था। डा० नागेश ने सीधे स्वभाव से एक प्रश्न किया—"जी, कहिए क्या आज्ञा है ?'

उत्तर मिला—'आपकी कृपा है ?"

आप मुझसे मिलना चाहते थे ?'

"जी जी, हां।"

में उपस्थित हूँ ।

वह झिझका नहीं, बोला— 'जी बात यह है कि मैं अपने मस्तिष्क का आपरेशन करवाना चाहता हूँ ।

'मस्तिष्क का ?

'जी हाँ, देखिये यहाँ पर —उसने अपनी टोपी उतार कर मेज पर रख दी और दाहिने हाथ से गरदन के पृष्ठभाग को दबाते हुए कहा— देखिये यहीं पर बहुत तेज दर्द होता है। फिर धीरे धीरे ऊपर तक चला जाता है।"

डाक्टर ने वहीं बैठे बैठे पूछा—"हमेशा होता है ?"

जी, आरम्भ में तो कभी-कभी होता था, पर अब प्राय सदा ही होता रहता है। कभी कभी तो इतना तीव्र होता है कि तिलमिला उठता हूँ।

'इस समय कैसा है ?'

इस समय तीव्रता नहीं है। होती तो मैं यहाँ न बैठ सकता ?'

'उसके होने का क्या कोई समय विशेष है ?'

'कुछ निश्चित नहीं, बहुत देर एकान्त में रहने पर अथवा बहुत बातचीत के बाद या रात्रि के समय अक्सर हो जाता है।

'आप तनिक लेटेंगे ?"—डाक्टर मागेश ने कहा और वह स्वयं भी उठ कर उसके पास आ गए, पूछा—"आपका शुभ नाम ?'

सन्तकुमार'—उसने लेटते हुए उत्तर दिया। डा० ने उसके सिर को दबाया। दर्द के स्थान की अच्छी तरह परीक्षा की। पूछते रहे 'हाँ। तो सन्तकुमारजी, यहाँ पर दर्द बहुत होता है ?"

"जी हाँ, यही तो मनुष्यता का स्थान है ?"

"क्या ?"

"जी हाँ, यहाँ वे गुण जन्म लेते हैं जिनसे मनुष्यता का निर्माण होता है।"

डाक्टर हँसे—"आप तो ज्ञानी जान पड़ते हैं।"

"डाक्टर साहब", सन्तकुमार ने उत्सुकता से कहा, "प्रेम, सौहार्द, सहानुभूति, करुणा आदि गुणों का स्थान यही है। यहीं से ऊपर जाकर वे उन ज्ञानतन्तुओं का निर्माण करते हैं जो मनुष्य को बुद्धि प्रदान करते हैं।"

"निस्सन्देह !" डाक्टर ने प्रशंसा के स्वर में कहा, पूछा—"जब दर्द उठता है तो कैसा लगता है ?"

"तब तब डाक्टर साहब, ऐसा होता है कि जैसे मस्तिष्क में कानखजूरा घुस बैठा है। उसके पंजों की जकड़ मैं स्पष्ट अनुभव करता हूँ। फिर तो जैसे ग्लानी से हृदय टीसने लगता है। जी में उठता है कि सिर दीवार से दे मारूँ या किसी का गला घोट दूँ।

"और ?"

"और कभी-कभी रोने लगता हूँ, हिचकियाँ बँध जाती हैं।"

"ऐसा ही होता है"—डाक्टर ने गम्भीर होकर कहा और फिर धीरे-धीरे सिर दबाते हुए एक नस को पकड़ा, उसे दबाया, पूछा—कैसा लगता है ?"

लेकिन उत्तर में डाक्टर ने देखा—सन्तकुमार की मुट्ठियाँ भिंच रही हैं। हाथ एंठने लगे हैं। शिरायें उभर आई हैं, देखते देखते उसने सिर को एक झटके के साथ डाक्टर के हाथों से छुड़ा लिया और उठ बैठा, उसकी पुतलियाँ तीव्रता से घूमने लगीं। डाक्टर ने शीघ्रता से अपने सहकारी को पुकारा—"डाक्टर कुमार, अभी सुई लगानी होगी, जल्दी करो, और नर्स तुम मिक्सचर ले आओ।"

कुल पांच-सात मिनट में यह सब हो गया। सन्तकुमार कई क्षण तक एक थके यात्री की भाँति बेबस लेटा रहा। फिर एकाएक उठ बैठा।

वह शिथिल था। पर उसकी आखें शान्त थी। उसने डाक्टर को तनिक अचरज से देखा फिर आखें मिला। डाक्टर ने धीरे से कहा—"अब आपकी तबियत कैसी है ?"

वह फुसफुसाया—'आपने अभी तक मेरे मस्तिष्क का आपरेशन नही किया ?'

डाक्टर ने कहा—'अभी नहीं, अभी तो मुझे तैयारी करनी होगी पर विश्वास रखिए करूंगा अवश्य।

ऐसा लगा सन्तकुमार को विश्वास नहीं आया। तब अनुभवी डाक्टर बोले—"क्या आप अस्पताल में रहना पसन्द करेंगे ?"

"अवश्य"—रोगी ने सहसा चमकते हुए कहा।

डाक्टर को इस विचित्र रोगी में दिलचस्पी थी। उसने अपने सहकारी को उचित प्रबन्ध करने को कहा और जाते हुए बोले—"रात को कोई परिवर्तन हो तो मुझे तुरन्त सूचना मिलनी चाहिए।"

फिर वह चले गये परन्तु वह रोगी उनके मस्तिष्क से नही जा सका। अपनी पत्नी से उसका वर्णन करते हुए बोले—"मुझे विश्वास है कि इस व्यक्ति को कोई गहरा सदमा पहुंचा है।"

"हो सकता है।"

"और वह सदमा भी ऐसा है, जिसके लिए वह अपने को दोषी मानता है ?"

"ऐसी क्या बात है ?"

"कुछ समझ में नही आता। वह युवक नही है, अधेड़ है। हो सकता है वह किसी विधवा का धन हड़प गया हो ?"

पत्नी ने पूछा—"क्या उसकी आंखों में क्रूरता झलकती है ?"

"यही तो बात है। उसकी आंखों में क्रूरता नहीं, बल्कि भय और ग्लानि का अद्भुत संमिश्रण है।"

"तो"—पत्नी ने कहा—"हो सकता है वह अपराध भूल से हो गया हो।"

डाक्टर बोले— 'मैंने दुनियाँ देखी है। मैं जानता हूँ वह पश्चाताप की आग में जल रहा है। उसने कोई भयङ्कर पाप किया है। कभी-कभी तो उसकी आँखें इतनी निस्तेज हो जाती है कि दिल पर चोट लगती है।

वह अभी अपना वाक्य पूरा भी नहीं कर पाये थे कि बाहर से नौकर ने आकर कहा, "डाक्टर कुमार आये हैं।' उनका माथा ठनका। वह शीघ्रता से बाहर आये। कुमार ने उन्हें बताया, 'नया रोगी पागल हो गया है।'

डाक्टर जैसे थे वैसे ही चल पड़े। जब वह अस्पताल पहुँचे तो उस रोगी को एकान्त कमरे में ले जाया जा चुका था। उस निस्तब्ध रात्रि में उन्होंने दूर से ही उसकी तीव्र वेदना-मयी वाणी को सुना। वह कह रहा था, "मैं पागल नहीं हूँ। नहीं, मैं पागल नहीं हूँ। मैं बिल्कुल होश में हूँ और मैं सोच समझ कर कहता हूँ कि मैं ने महात्मा गांधी की हत्या की है।

डाक्टर नागेश ने हठात् आकाश में विद्युत का अपूर्व प्रकाश देखा। वह सिहर उठे। कई क्षण तक आगे बढ़ने के श्रम में जहाँ के तहाँ खड़े रहे। स्वर उसी तरह उठ रहा था "क्या तुम मेरा विश्वास नहीं करते। तुम ऐसे क्यों देख रहे हो? अहा हा हा तुम सोच रहे हो गांधीजी को मारने वाला गोडसे है। उसने अपना दोष स्वीकार कर लिया है। अहा हा हा, तुम सब मूर्ख हो—"

ठीक इसी समय डाक्टर ने उस कमरे में प्रवेश किया। उनके आते ही नर्स और डा० कुमार एक ओर हट गये। रोगी ने उन्हें देखा। वह मुस्कराया, "तुम आगये। मैं तुम्हारी राह देख रहा था। तुम समझदार हो। ये लोग मेरी बात मानते ही नहीं।'

डाक्टर नागेश ने चुपचाप उसके पास जाकर सिर पर हाथ रखा, सहलाया फिर प्यार से थपथपाकर बोले, ये लोग तुम्हारी बात नहीं समझ सकते। तुम मुझसे कहो, क्या कहते हो?"

न जाने क्या हुआ ! कहाँ तो हुँकार रहा था, कहाँ वाणी उच्छ्वासित हो उठी। बोला—"मैंने महात्मा गांधी की हत्या की है। मैंने उन्हें मारा है—"

और कहते-कहते वह फूट पड़ा। दूसरे ही क्षण उसकी हिचकियाँ बँध गईं। डाक्टर का हृदय एक साथ करुणा, अचरज और भय से विह्वल हो गया। उन्होंने कुमार को संकेत किया कि वे इन्जेक्शन ले आये। और फिर रोगी से बोले—"सन्तकुमार, तुम वीर पुरुष हो, ऐसे नहीं रोया करते। देखो मैं तुम्हारी बात का विश्वास करता हूँ

सन्तकुमार ने दृष्टि उठा कर पूछा, "तुम मेरी बात का विश्वास करते हो।"

"हाँ।"

जैसे शिशु ने रंगीन गुब्बारा पाया हो। वह हर्ष से भर कर बोला, "तुम समझदार हो। तुम गोडसे को हत्यारा नहीं मानते। हत्यारा मैं हूँ। वह मेरा दूत है, मेरा हाथ है, मैं मस्तिष्क हूँ। हाथ कभी अपने आप काम नहीं करता है। जानते हो—?"

डाक्टर ने यन्त्रवत् अपने को चौंकाते हुए कहा, "हाँ मैं जानता हूँ कि हाथ अपने आप कुछ नहीं करते। वे सदा मस्तिष्क की आज्ञा मानते हैं।"

निस्सन्देह ! हाथ सदा मस्तिष्क की आज्ञा मानते हैं। मेरे मस्तिष्क ने जब बार-बार हाथों से कहा—वह गलत है। वह हमें विनाश की ओर ले जा रहा है। वह हमें नष्ट कर देगा तब—तब—'

उसका स्वर फिर बदला। वह क्रोध से काँपने लगा। बोला—"तब हाथों ने मस्तिष्क की वेदना को समझा और आज्ञाकारी सेवक की भाँति उसकी वेदना दूर करने को आगे बढ़े—"

"ठीक है ऐसा होना ही था", डाक्टर नागेश ने यन्त्रवत् कहा, और फिर गरदन को झटका दिया। उन्हें लगा जैसे वह स्वयं सज्ञा खो रहे हैं और एक ऐसे मनोजगत् में पहुँच रहे हैं, जहाँ सघन अन्धकार में एक

ज्योति चमक उठी है। रोगी कह रहा था और रो रहा था—"और उस आज्ञाकारी ने एक दिन अपने स्वामी को प्रसन्न करने के लिए महात्माजी को मार डाला। उस निर्दयी को तनिक भी दया नहीं आई। आती कैसे ? वह तो यन्त्र था। दोष तो मस्तिष्क का था—

वह सहसा तीव्र हुआ 'हाँ, दोष मेरे मस्तिष्क का था ! मेरे मस्तिष्क ने उसे पथभ्रष्ट किया उसे उत्तेजित किया और इस प्रकार शांति के उस स्रोत का गला घोंट दिया। डाक्टर, उसने अपने जन्मदाता को ही मार डाला—"

डाक्टर सहसा कुछ न कह सके। वे सोच रहे थे—यह पागल है अथवा कोई ऋषि। यह एक ऐसे सत्य का उद्घाटन कर रहा है जो गोपनीय होकर भी असत्य नहीं है। कहते हैं पागल की अन्तर्दृष्टि खुल जाती है।

रोगी सिसक रहा था। उसने अपना सिर दोनों हाथों से पकड़ रखा था। उसके घुटने मुड़ रहे थे। वह सिकुड़ कर गेंद की तरह बन गया था। डाक्टर कुमार ने उसके फिर सुई लगाई। अचरज इस बार वह हिला तक नहीं और देखते देखते कुछ क्षण में वह शिथिल होकर बिस्तर पर गिर पड़ा। वह रह रहकर सुबक उठता था। फुसफुसाने लगता था, 'जो शक्ति उस महात्मा ने मुझे जीने के लिए दी थी, उसी मैंने उसी के प्राणों पर डाका डाला—"

बुत की तरह बैठे हुए डा० नागेश को तब सहसा भस्मासुर की कहानी याद आ गई। किसी के सिर पर हाथ रख कर जला देने का वर उसने शिव से पाया था और सबसे पहले उन्हीं को जला देने को वह दौड़ा। विष्णु न होते तो शायद वह शिव को भस्म कर देता, पर आज जब भस्मासुर शिव को भस्म करने दौड़ा तो आगे नहीं, उसके हाथ से भस्म हो गए, मानो अपने शरीर के साथ उन्होंने मानव के पापों को भी भस्म करना चाहा था।

डाक्टर को अचरज हुआ, उनके भीतर भी ज्ञान है। जैसे इस रोगी ने उनके ज्ञान चक्षु खोल दिए हैं, पर वह स्वयं तो संज्ञाहीन सा उसी प्रकार

लेटा था। रह रहकर उसके ओठ फड़क उठते थे, जैसे वह स्वप्न मे बड-बडाने लगता हो। डाक्टर ने नर्स को छोड़कर सबको चले जाने को कह दिया। स्वय वे उसके पास जाकर बैठे। तब रात गहरी हो चली थी। शून्य मे तनिक सी ध्वनि गहरी उठती थी। कहते हैं शून्य सहस्त्रो जिह्वाओ से बोलता है, विशेषकर मृत्यु के आङ्गन का शून्य। उनका मस्तिष्क विचारो के तूफान से गूञ्जने लगा, पर वे सब ओर से ध्यान हटाकर रोगी की उच्छ्वासित वाणी सुनने लगे। वह रह रहकर बोल उठता था, 'जिस समय वह मानवता की प्राणप्रतिष्ठा के लिए प्राणो को होम रहा था, उस समय मै ने अपने प्राणो की रक्षा के लिए हिंसा का स्वर उठाया। उस समय मै ने गीता के कृष्ण की दुहाई दी और शस्त्र बल का प्रचार किया। जिस समय वह दुश्मन को दोस्त बनाने मे लगा हुआ था, मै ने लोगो को दुश्मन पर हमला बोल देने को उकसाया—यह सब मैंने किया, मैं जो अपने को उसका शिष्य, उसका साथी कहता था—।"

उसकी फुसफुसाहट धीमी पडती जाती। डक्टर और भी उसके पास खिच आए। सोचने लगे-आदमी क्या है! जीवन की समस्त शक्ति लगाकर पहले क्षण वह एक तथ्य का प्रतिपादन करता है, परन्तु दूसरे ही क्षण उसे पता लगता है कि वह जिस भूमि पर खड़ा था, बिल्कुल कच्ची थी। वह केवल सन के छूछे गोले छोड रहा था।

'कायर' डाक्टर ने तीव्रता से कहा और तभी सन्तकुमार बडबडाया —"मै कायर था और वह वीर। कायर हत्या करता है वीर जीवन देता है!"

सन्तकुमार उसी तरह बडबडा रहा था।

डाक्टर ने फिर पुकारा—' सन्तकुमार! सुनो—"

उधर से नर्स शीघ्रता से आई बोली—"क्या है डाक्टर?'

डाक्टर चौंके। धीरे से कहा, "कुछ नही।" फिर कुछ क्षण सन्नाटा सा छाया रहा। डाक्टर के मन मे उमड़ घुमड़ कर कुछ विचार उठ रहे

थे। उन्ही को रोगी पर प्रकट करना चाहते थे, पर वह तो संज्ञाहीन था। इसलिए कागज उठाकर वह लिखने लगे, "व्यक्ति का अस्तित्व काम मे है। गाधी अपने काम के कारण गाधी था। वह मर गया पर उसका काम अभी नही मरा। व्यक्ति की भाँति उसके प्राण तुरन्त नही निकले। यदि कोई अपने प्राण खपाकर उसके काम की रक्षा करे तो गाधी फिर जी उठेगा, उसी प्रकार एक दिन ईसा जी उठे थे।" लिख लिया तो स्वय उसे कई बार फुसफुसाकर पढा, फिर झुककर यन्त्रवत् रोगी के कान के पास ले जाकर पढने लगे, पर रोगी मे अब कोई चेतना न थी। उसकी फुसफुसाहट समाप्त हो चुकी थी। वह प्रगाढ निद्रा में सो गया था। डाक्टर उठे, उन्होने अपने को सम्भाला, उनकी चेतना लौटी। उन्होने रोगी की परीक्षा की। उन्हे लगा, अब उनके वहाँ रहने की आवश्यकता नही। इसलिए वह उठे और नर्स से कहा—'सिस्टर, रोगी अब सवेरे से पहले नही जागेगा, फिर भी कोई बात हो, तो मुझे सूचना दी जाये।'

"बहुत अच्छा।"

'और देखो, जब वह जागे तो यह पत्र उसे दे देना।"

"जी दे दूँगी।"

उसके बाद डाक्टर चले गये। जैसा कि उनका विचार था, रोगी सूर्य के प्रकाश के साथ ही जागा। वह कई क्षण दृष्टि घुमाता रहा फिर अचरज से पूछा - "मै कहाँ हूँ?"

नर्स ने उत्तर दिया—"क्यो! आप अस्पताल मे है।"

"मै अस्पताल मे हूँ! अस्पताल मे क्यो?'

तभी नर्स ने डाक्टर का पर्चा उसे दिया। उसने एक बार नर्स को देखा, फिर परचे को। उसे पढा और रख दिया, पर दूसरे ही क्षण उसे फिर उठाया और पढा। फिर एक दम नर्स से पूछा—"क्या वह जा सकता है?'

नर्स सकपकाई, परन्तु उसे पागल समझकर कहा—"हाँ, वह अवश्य जी सकता है।"

"तो फिर ठीक है"—यह कहकर वह उठ बैठा। बहुत देर तक बैठा रहा, देखता रहा, फिर खड़ा होकर बाहर जाने लगा। नर्स ने घबराकर पूछा—"आप कहाँ जा रहे हैं?"

"क्यों? अपने घर।"

"नहीं, नहीं, आप बीमार हैं।"

वह स्वस्थ व्यक्ति की भाँति हँसा, बोला—"डरो नहीं, नर्स। मैं बिलकुल ठीक हूँ।"

"फिर भी डाक्टर से पूछे बिना आप नहीं जा सकेंगे।"

तभी डाक्टर ने वहाँ प्रवेश किया। रोगी को खड़े देखकर वह मुस्कराये—"अहा सन्तकुमारजी, क्या हाल है?"

सन्तकुमार ने कहा—"आपकी कृपा है डाक्टर साहब, मैं घर जा रहा हूँ।

"अभी?"

"जी हाँ।"

"आप पूर्ण स्वस्थ है।"

"जी हाँ, स्वस्थ होने के मार्ग का मुझे पता लग गया है।"

"ओह, इतनी शीघ्र" डाक्टर ने हँसकर कहा। फिर बोले, "अभी ठहरो, चाय पीकर जाना।"

पर सन्तकुमार रुका नहीं, चला ही गया। जाते समय उसने डाक्टर की ओर ऐसी कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से देखा कि वह सकपकाकर रह गये, कुछ कह न सके। जाने के बाद ही उन्हें होश आया, पर अब वह पूर्ण शान्त थे। आज उन्होंने शल्य-चिकित्सा में एक अद्भुत

आविष्कार किया था। प्रतिदिन वह शरीर चीरा करते थे, पर आज उन्होंने शरीर को आत्मा को चीरा था और वह भी आशातीत सफलता के साथ। यही उनका सुख था पर यही दुःख भी था, क्योंकि जो सफलता आसानी से मिल जाती है, वह आसानी से चली भी जाती है।

उनका यह भय ठीक निकला। एक दिन डूबते सूर्य के प्रकाश में उन्होंने उसी भयावह मूर्ति को फिर देखा। तब वह अस्पताल से लौट कर कपड़े उतार रहे थे कि कोई करुण स्वर में पुकार रहा है—"डाक्टर साहब! डाक्टर साहब!!"

डाक्टर साहब चौंके। नौकर से कहा—'देखो कौन है?"

नौकर ने आकर बताया—"जी! मुझे तो कोई पागल जान पड़ता है।

उनका माथा ठनका। आकर देखा तो सन्तकुमार सशरीर उपस्थित थे, पूछा—'कहिये क्या हाल है?"

सन्तकुमार ने उत्तर दिया—'डाक्टर साहब! मेरे मस्तिष्क में फिर तीव्र पीड़ा होने लगी है। कृपया उसे चीर दीजिए।

इस बार वह विक्षिप्त से अधिक दयनीय थे। डाक्टर क्षण भर कुछ नहीं बोले तो बड़ी विनम्रता से हाथ जोड़ कर कहा—"डाक्टर! आप चिन्ता न करिये, आपरेशन कर दीजिए। बड़ी कृपा होगी।"

डाक्टर बोले—"आपरेशन तो अस्पताल में हो सकता है।"

"तो मैं वहीं आऊंगा। कब आऊं?"

"जब आप चाहें।"

"तो मैं कल दोपहर को आऊंगा।"

और फिर बिना कुछ कहे नम्रता से उठे और प्रणाम करके चले गये। चले गये तो डाक्टर को होश आया। शीघ्रता से फोन पर आये। कई डाक्टरों से उन्होंने मन्त्रणा की और कल दोपहर को आने का निमन्त्रण दिया। उन लोगों को भी इस विचित्र रोगी में दिलचस्पी

थी इसलिए वे अगले दिन दोपहर को ठीक समय पर अस्पताल मे आ उपस्थित हुए। धीरे धीरे दोपहर बीतने लगा और डाक्टर नागेश का भय बढ़ने लगा कि इसी समय नर्स ने आकर कहा—"डाक्टर ! जल्दी चलिए।"

क्यो ? क्या वह आ गया ?

'जी हाँ पर ।"

"पर क्या ?"

'वह बुरी तरह घायल है।"

"ओह क्या उसने अपना सिर फोड लिया ?"

"जी नहीं" उसके साथ आने वाले व्यक्ति ने बताया—'उनके पडोस में एक मुसलमान के मकान को लेकर कई दिन से झगडा चल रहा था। एक स्थानीय समृद्ध व्यक्ति उसे घेरे हुए थे, पर साथ ही शरणार्थी कहते थे, वह मकान उन्हे मिलना चाहिए। इसी बात पर आज झगडा बढ गया। दोनो दल लाठियाँ ले आये। सन्तकुमार को पता लगा तो वे हाथ जोडकर दोनो दलो से शान्ति की प्रार्थना करने लगे। कहा—'आगे चलकर मकान किसी को मिले पर आज उसमे शरणार्थी ही रह सकते हैं।' इस पर वे सज्जन बिगड उठे। झगडा यहाँ तक बढ़ा कि लाठियाँ चल गई। सन्तकुमार से नही रहा गया। वे बीच में ही जा खडे हुए और जो लाठियाँ एक दूसरे की हत्या करने को उठी थी, एक साथ उनके सिर पर पडी।"

वे घायल के पास आ गये थे। डाक्टर नागेश का हृदय करुणा और आदर से द्रवीभूत हो रहा था। उन्होने देखा—रक्त से लथपथ सन्तकुमार सामने लेटे हैं। उनका शरीर शिथिल है पर नेत्रो मे अद्भुत शान्ति झलक उठी है। दृष्टि मिली तो वह मुस्कराये। सकेत से डाक्टर को पास बुलाया, कहा—"मै व्यर्थ ही भटक रहा था। यह आपरेशन आप तो सौ जन्म मे भी नही कर सकते थे। मेरे भाग्य अच्छे थे कि आज अचानक ही मुझे मेरे डाक्टर के दर्शन हो गये। उस दिन

आपने संकेत तो किया था पर मैं ठीक समझ न सका। आज समझा हूँ।"

वह बोल रहे थे और डाक्टर नागेश अपलक ध्यानस्थ की भांति उनको देख रहे थे पर तभी सहसा उनकी दृष्टि कांपी, सकपकाकर कहा —"डा० कुमार, शीघ्रता करो इन्हें रूम न० पांच में ले चलो। जल्दी "

सन्तकुमार ने जाते जाते उसी तरह कहा—"डरो नहीं डाक्टर। मैं जिऊँगा। गांधीजी को पुनर्जीवित करने के लिए मुझे अभी बहुत दिन जीना होगा।"

— —

रांगेय राघव

१२. नई जिन्दगी के लिए

हम नौ लड़कियाँ थीं। मेरी उम्र उस समय करीब पन्द्रह साल की थी। मैं समझदार थी। अब जब मैं स्वयं तीन बच्चों की माँ भी हो चुकी हूँ मेरा दृष्टिकोण बहुत बदल गया है, पर तब नई उमर थी। तब क्या मैं इतनी अक्ल रखती थी कि असलियत को समझ पाती। लेकिन तुम्हें उसी समय की बात सुनाती हूँ। पन्द्रह साल में ही मुझे काफी काम करना पड़ता था। मेरी माँ को मुझसे बहुत अधिक स्नेह था।

माँ के और प्रसव होने वाला था। उनके नौ बार लड़कियाँ हो चुकी थीं और एक दूसरी बहिन में समय का इतना कम अन्तर होता था कि उन्हें सम्भालना काफी कठिन हो गया था। कौन जाने—घर में अब भी वही चार साल पुरानी हालत चल रही हो।

मुहल्ले में किसी के ही घर में नल न था। हम सड़क से पानी भर लाया करती थीं। जब मैं नल पर पानी भरने लगी, ठकुराइन ने पूछा—"क्यों, तेरी माँ के कुछ होने वाला है?"

मैंने सिर हिला कर स्वीकार कर दिया। ठकुराइन भला चुप क्यों होती? पूछ बैठी—"कितने दिन रहे?"

मैंने दबी जबान से कहा—'जल्दी ही।'

ठकुराइन मुस्करा दी। मैं उससे डरती थी, क्योंकि उसको लड़ने का अच्छा अभ्यास था और चिल्ला चिल्ला कर मुहल्ले को उठा लेती थी।

शायद सामने की खिड़की में बैठे हुए लड़के ने मेरी बात सुन ली, क्योंकि वह हँस रहा था। मुझे बस लाज लगी हालाँकि बात कोई नहीं हुई थी। मैं ने झट से दरवाजा बन्द कर लिया और भीतर आ बैठी।

माँ खाट पर पड़ी सो रही थी। बच्चियाँ कुछ सो रही थीं, कुछ खेल रही थीं।

सुखदा मुझसे दो साल छोटी थी। वह कहीं गई हुई थी। उसके कपड़े आँगन में ही पड़े हुए थे।

बाबूजी दफ्तर में नौकरी कर रहे थे। उनकी तनख्वाह अस्सी रुपये से ज्यादा न थी। मैं ने उन्हें कभी प्रसन्न नहीं देखा। उनके माथे पर गहरी लकीरें पड़ी रहती थी। मूछें काली और लम्बी थीं। लोग कहते हैं कि मैं उन्हीं पर गई हूँ।

जब वे दफ्तर से लौटते तब भी वे थके माँदे दिखाई देते, जब जाते तब भी उनमें फर्क दिखाई नहीं देता था। उस थकान के कारण उनके होठों पर कालापन छाया रहता और उनकी आँखों से एक टिमटिमाती-सी चमक दिखाई देती थी। दफ्तर से आते ही वे हमें एक दम डाँटने लगते। मैं रोने लगती।

हृदय भीतर से घुमड़ घुमड़ कर आँखों की राह निकलने लगता, पर उन पर इन सबका कोई असर नहीं होता। छोटी-छोटी बच्चियाँ अपने छोटे-छोटे हाथों से मुझे सहला कर सान्त्वना देतीं। उनका मूक आश्वासन बहुत लाभदायक होता। तब वे बहुत कठोर थे। मैं सोचती। हे भगवन्! दिन भर काम करती हूँ। सब घर सँभालती हूँ, पर ये नहीं ठीक रहते। मैं सखी-सहेलियों की ओर देखती जिनके पिता उन्हें प्रेम करते थे। तब मुझे लगता कि मेरे पिता मनुष्य नहीं थे। शायद उनमें हृदय नहीं था। कभी-कभी क्रोध बढ़ने पर मार-मार कर वे बेहाल कर देते और बच्चियों की कोमल देहों पर नीले-नीले दाग पड़ जाते। जब उनका उठा हुआ हाथ चलता ही जाता और बच्चियाँ

के शोर से घर फटने लगता तथा घर में कुहराम मच जाता तब पड़ोस की बुढ़िया दादी का स्वर सुनाई देता—कन्धा पर हाथ उठा रहा है विरजू ? यह तो कोई रोत नहीं है। अरे तेरे घर में जन्म लिया है, निठुर ! निर्दयी ! बस कर, बस, हल्ला कर रहा है।

उस स्वर को सुन कर पिता जैसे चौंक उठते और लौट पड़ते। उनका सिर झुक जाता और वे सूनी आंखों से देखने लगते।

इधर माँ की हालत पहले से खराब हो गई थी। वे बाबूजी की मनोव्यथा से पूर्णतया परिचित थीं। आजकल कभी-कभी उन्हें उल्टी हो जाती, कभी मन पिराने लगता। सिर दर्द बढ़ गया था। हाथ-पांव पीले पड़ चले थे। और मैं जब उन्हें देखती सदैव उनकी आंखों में एक भय दिखाई दिया करता था।

बाबूजी दिन भर पूजा करते। दफ्तर में भी मुँह में हनुमान गुटका रखते, जो बाबा सांवलदास ने उन्हें पुत्र होने के लिए दिया था। उन्होंने कहा था, इस मन्त्र से कुछ भी बढ़कर नहीं। अगर यह भी काम नहीं देता तो समझ ले तेरे भाग्य में आटे का भी लड़का नहीं लिखा है। पिताजी ने इसे देव-वाक्य समझ कर मन में धारण कर लिया था।

शाम को जब पीपल की खड़खड़ाहट सुनाई देती, जब अंधेरे में मंदिर का गंध भरा धुआं गली में लौटने लगता और घर के बाहर के उस निकोने चबूतरे पर छा जाता, एक छोटे-से निवाड़ के खटोले पर मैं बैठी भरना भाभी और नन्ही बहिन को पुचकारती हुई खिलाया करती। कभी-कभी तो मुझे फुर्सत मिलती थी। बस उन्हें दुलारा नहीं कि एक छोटे-छोटे पैरों से चलती हुई आती और दूसरी घुटने के बल सरकने लगती। मुझे देखना अत्यन्त प्रिय मालूम देती। अफसोस, उन्हें कोई स्नेह तक देने वाला न था।

नींद मुझे इतनी गहरी आती है कि जरा सा लेटते ही सारी सुध बुध खो जाना, फिर कोई कितना ही आवाजें दे, सहज में नहीं टूटती थी। ठकुरानी मुझसे कहती थी—क्यों पैदा हो गई कम्बख्ती ! क्या बाबूजी को

जिन्दा ही मार डालेगी ?

जब मै यह सुनती तन मन रुआँसा होने लगता। इसमे हमारा क्या दोष था। पर जब मै माँ को देखती तो लगता वह सब झूँठ था। माँ की आँखो मे दुख ही दुख था, पर जब मुझे देखती तब उनमे एक याचना होती। मै उस दृष्टि की दयनीयता को देखकर माँ की गोद मे सिर रख कर उन्हे हँसाने लगती थी। मै समझती तो थी, पर बात की असलियत को मुझे अभी तक तोलना नही आता था।

ठकुरानी कहती थी—मारता है ? अरे मारेगा नही। नौ-नौ बाघ जिसे पालने पड़े उसकी बुद्धि भ्रष्ट नही हो जायेगी ? एक नही रहोगी। उमर आने पर नवल से झाड़-झाड़ कर चल दोगी। बेचारे बूढ़े को कङ्गाल कर जाओगी और उसकी देख-रेख करने वाला तक कोई न रहेगा। कही किसी ने उसका मुह भी काला कर दिया तो बेचारे को डूबने तक की ठौर नही मिलेगी। राम राम। एक हो, दो हो। पूरी फौज है। बाप रे। कन्यादान करते-करते ही बेचारे के घुटने टूट जायेंगे।

जब ठकुरानी मुझसे ये बाते करती, मैं घर आकर चुपचाप खाट पर पड़ जाती। तब क्या हमे मर जाना चाहिए ?

सदा की भाँति इस बार भी बुआ के घर से पहले ही से कुर्ता, टोपी आ गये, जिन्हे देख कर मै समझी कि निश्चय ही अब की बार मेरे एक भाई पैदा होगा। मै ने माँ को दिखाये। शाम को जब पिता जी घर आये तब मैं ने खुशी खुशी जाकर कहा—बाबूजी !

उन्होने गरज कर कहा—क्या है ? सब सुना है।

माँ से बाबूजी की एक दिन रात की बात मै ने सुन ली।

बाबूजी कह रहे थे—अगर तुझ जैसी अभागिन मेरे घर न आती तो अभी मेरी जिन्दगी हराम होती। अब वह बुढ़िया तो जिन्दा नही है, जिसने पहली दो बहुएँ मरने पर हाय हाय करके खा डाला था कि बेटा ! ब्याह कर वर्ना घर का दीप बुझ जाता है। अब जल रहे हैं न चिराग। दिन [illegible] भी नही बुझते।

उनके स्वर मे क्रोध था। माँ ने धीरे से कहा—यह तो किसी के बस की बात नहीं। जो भगवान् देता है, वह तो सब लेना ही पडता है। अगर ऐसा ही है तो दो-चार का गला घोटकर अपने को आजाद कर लो। उनकी जिन्दगी भी हराम करने से क्या मिल जायगा?

बाबूजी कभी यहाँ दौडते, कभी वहाँ। वे हाँफ रहे थे। उनका भाल विकृत हो रहा था। मुझे उनको देखकर एक भय होने लगा। ऐसा लग रहा था कि आज वे किसी जग पर चढे हुए थे। ऐसा होने वाला था, मेरी समझ मे बिल्कुल नहीं आया। तभी पिताजी का स्वर सुनाई दिया। उन्होने पुकारकर कहा—दाई आ गई है।

एक बूढी ने भीतर प्रवेश किया। मैं उसे जानती थी। वह हमारे घर अक्सर आती थी और हमारे परिवार की अच्छाइयो और बुराइयो से परिचित थी। बिना मेरी सहायता के ही उसने अपनी राह ढूँढ ली और भीतर के अन्धेरे मे चली गई, जहाँ मद्धम-सा दीपक जल रहा था।

मैं कभी भीतर जाती, कभी बाहर। मेरा दिमाग बिल्कुल बेकार सा हो गया था। दाई ने मुझे देखा तो कहा—जा बेटी। थोडी देर जाकर सो रह। तुझे इतनी मेहनत की क्या जरूरत है। जब जरूरत होगी तुझे जगा लूँगी।

मैंने उसमे देवी का अंश देखा। वह मुझे अत्यन्त करुणामयी दिखाई दी। डरती-डरती मैं अपनी कोठरी मे आकर खाट पर पडी रही। थकान से शरीर चूर-चूर हो रहा था। पडते ही मुझे नींद आ गई।

एकाएक घर मे बड़े जोर का शोर हुआ। नींद मे पहले तो मैं समझ नही सकी। पर जब कोई आकर मेरी खाट से टकराया और गिर पडा, हठात् मैं जाग उठी। एकदम आँखे खोलने से पहले तो मुझे कुछ भी दिखाई नहीं दिया। पर धीरे-धीरे मैंने पहचाना वह सुखदा थी। एक-एक करके सब बच्चियाँ मेरे पास इकट्ठी हो गई थीं।

मैं ने फटी हुई आँखों से देखा। जैसे अभी अभी उन पर हमला हुआ था, सुखदा फट फट कर रो रही थी। बाकी बच्चियों में से कोई सिसक रही थी। कोई डर से चुप हो गई थी। मेरे सिर में दर्द होने लगा। बड़ी कठिनता से मैं ने उनको धीरज बंधाया। जब वे चुप हुईं तब मैं उठकर कमरे से बाहर आई। जो देखा, उससे जैसे मुझ पर भयानक चोट हुई। हृदय टूक-टूक हो गया।

बाबूजी देहलीज पर सिर तोड़ रहे थे। मुझे लगा कि काटने पर भी अब मेरे शरीर से लहू नहीं निकलेगा। घर में एक भयानकता छा गई थी। मैं ने माँ के कमरे की ओर पग उठाया। दाई ने मुझे हेरा और दया से मेरी ओर देखा। मैं कुछ नहीं समझी। मैंने पूछा—'क्या हुआ?'

सुना, मेरी एक और बहिन हुई थी।



चन्द्रकिरण सौनरेक्सा

१४. जीजी

,'यही हैं ?" आश्चर्य से इन्दु ने पूछा।

"हाँ" उपेक्षा से गर्दन हिलाकर सुरेखा ने उत्तर दिया।

"अरे !" इन्दु ने एक टुकडा समोसे का मुँह में रखते-रखते कहा—"अच्छा हुआ सुरेखा तुमने मुझे बता दिया, नहीं सच जानो मैं कहने वाली थी कि मिश्रानी जी समोसे तो तुम बढ़िया बना लेती हो।"

"ऊँह तो क्या होता—इन्हें कोई देखने वाला इससे अधिक समझ भी क्या सकता है ? दिन भर हाथ में झाड़ू लिए घर की सफाई में जुटी रहती हैं। 'पोजीशन' का खयाल तो इन्हें कतई है नहीं, मुझे तो बड़ी शरम लगती है इन्हें अपनी ननद बताते।"

"शायद गाँव में रही हैं ?"

'कोई भी नहीं"—सुरेखा ने मुँह बिचका कर कहा,—"शहर में पैदा हुईं, शहर में पलीं, विवाह बेशक गाँव में हुआ, किन्तु वहाँ रहीं कितने दिन। जभी विधवा हो गई और तब से बारह साल होने आये यहीं हैं। पर इस घर का तो वातावरण ही बिगडा हुआ है। लीला ही को लो, उसे कोई कहेगा भला कि 'नाइन्थ' में पढ़ती है। नारायण और जगदीश को तो कुछ पूछो मत, ढंग से कपडे पहनने भी नहीं आते—"

"पर मिस्टर गिरीश तो ऐसे नहीं हैं।"

"वह तो इलाहाबाद में रहे हैं। नहीं तो शायद अपनी इन जीजी रानी के 'अण्डर' में रहकर भी 'बढ़िया के ताऊ' ही रह जाते ''।"

इन्दु धीरे धीरे हँसने लगी।

बाहर से लक्ष्मी ने पुकार कर कहा—"बहू! कुछ चाहिए तो मोहन से कह देना। मैं जप करने बैठती हूँ।"

सुरेखा के माथे पर बल पड़ गए। बोली—"कितनी बार कह चुकी हूँ कि मुझे बहू न कहा करो, मानती ही नहीं।"

"तो क्या हरज है कहने दे। लेकिन यह ठीक दोपहर को जप कैसे होगा?"

"इनकी लीला ही निराली है। वही जाने"—सुरेखा ने उपेक्षा से कहा—"ईश्वर जाने किस धातु की बनी है। दिसम्बर की इस भारी सरदी में चार बजे सवेरे बर्फ जैसे ठण्डे पानी से नहाती हैं। फिर तीन घण्टे जप करती है। आज मोहन को बुखार था। इसीसे गाय की सानी-पानी के झंझट में आधा जप ही कर पाई थीं।"

इन्दु ने आश्चर्य से लम्बी साँस छोड़ी—"बाप रे ठण्डे पानी से नहाना!"

"बस कुछ पूछो मत। चाहे सारा दिन बीत जाय, पर जब तक उस शालिग्राम की बटिया को दो लोटे जल में डुबकी न दे लें, मजाल क्या जो पानी की एक बूँद भी गले के नीचे उतारती हों। दो-दो नौकर हैं, मिश्रानी है, फिर भी खिटपिट कर सारा दिन जाने किन कामों में गँवा देती हैं और हर तीसरे दिन एकादशी, पूरनमासी के व्रत करती रहती हैं।"

"तेरे रङ्ग-ढङ्ग तो इन्हें काहे को पसन्द आते होंगे"—इन्दु ने मुस्कराकर पूछा।

"न आवें मेरी बला से। यहाँ परवाह कौन करता है! मैं तो वही आठ बजे सोकर उठती हूँ, तब तक सब काम हुआ पाती हूँ, मेरी चाय एक टेबिल पर रक्खी होती है—बात यह है कि होती कोई अनपढ़ गँवार लड़की, तो वह उसे जरूर दबा लेतीं"

'पर यहां तो श्रीमती सुरेखा गांगो श्राई० ए० से पाला पड़ा है न —" इन्दु बीच ही में बोल उठी 'चल' कुकर बहुत अच्छी है, मुझे तो फायदा ही है।"

"फायदा क्या मिश्रानी तो रखना ही पड़ती है। पर जब तक चार तरकारियाँ अपने हाथ से न बना लें तब तक इन्हें चैन थोड़े ही पड़ता है। मुझे तो बड़ा गुस्सा आता है सारे नौकरों की आदत खराब कर दी है, आधा काम बँटा लेती हैं उनका। दो-दो नौकर हैं, फिर भी जगदीश और नारायण को अपना दोपहर का भोजन करने स्कूल से आना पड़ता है। माना स्कूल दस कदम पर है। लेकिन नौकर होते आखिर किस मर्ज की दवा है? लीला को देखो संस्कृत के सैकड़ों श्लोक रटे बैठी है। तुलसी और सूर को घोटकर पी गई है। लेकिन इन्हें लिखा इतनी भी नहीं कि एक मामूली लेटर तो लिख लें।"

इन्दु थोड़ी देर और बैठी। फिर चली गई। मामा के यहाँ आई हुई थी, इसलिए सुरेखा से मिलने चली आई। पारसाल तक दोनों एक ही कालिज में पढ़ती रही थीं।

सुरेखा आरामकुर्सी पर पड़ी-पड़ी उपन्यास पढ़ने लगी। फिर सो गई।

सूरज का गोला जब चक्कर खाकर पश्चिम के अतल नील जल में डूब गया तब सुरेखा की नींद टूटी। सुना लक्ष्मी पुकार रही थी—"बहू! श्रो बहू!"

क्या है जीजी!" सुरेखा ने चिढ़े हुए स्वर में ऊपर से ही पूछा।

"नीचे तो आश्रो जरा—!"

सुरेखा को इच्छा हुई न जाय। फिर जाने क्या सोचकर शीशे के सामने आ खड़ी हुई। बाल सँवारे। मुँह पर जरा सी क्रीम मली और नीचे उतर आई।

"क्या काम है?" कुछ भिनककर, कुछ ठमककर-जैसे बोली।

"काम तो कुछ नही" लक्ष्मी गाय के लिए दाना दलते-दलते बोली —'सध्या—बेला बहू—बेटियों को लेटे न रहना चाहिए। आरती का समय भी होने आया।'

"आरती !"—सुरेखा तिनककर बोली "बस इसीलिए मुझे कच्ची नींद जगाकर सिर मे दर्द कर दिया।"

सारा चौका दुबारा धुला, चूल्हा पोता गया। फिर गङ्गाजल छिड़कने के बाद चूल्हे मे आंच जली। तवे को चिमटे सहित उठाकर लक्ष्मी ने दूर फेंक दिया। और मिश्रानी से बोली—"अब से मेरी कच्ची रसोई मे कभी हाथ मत लगाना। समझी ?"

मिश्रानी चिढ़ उठी—"जीजी ! तो मुझ पर क्यों बिगड़ रही हैं ? बहूरानी ने कहा तो मै ने अण्डे बना दिए।"

"बहूरानी ने कहा और तूने बना दिए। भली ब्राह्मणी है तू तो। यह काम मोहना नही कर सकता था क्या ? और फिर रसोईघर मे बनाने की क्या जरूरत थी ? अलहदा अङ्गीठी रखकर क्यों न बनाए।"

मिश्रानी मुँह भारी करके ऊपर चली गई।

सुरेखा बैठी हुई आमलेट खा रही थी। नीचे की कुछ-कुछ भनक उसके कानों में भी पड़ गई थी।

"क्या हुआ मिश्रानीजी ?"

"हुआ क्या बहूरानी, तुम मेरी नौकरी छुड़वाओगी। देखो, जीजी कितनी बिगड़ रही हैं।

'वे कौन होती हैं नौकरी से हटाने वाली। मैं न चाहूँगी, तो वे कैसे निकाल देंगी तुम्हे ?' सुरेखा ने प्लेट एक तरफ हटा कर रूमाल से मुँह पोंछते हुए कहा।

"सो तो ठीक है बहूजी—" मिश्रानी का स्वर धीमा पड़ा—"पर बहूजी हुक्म तो वह ऐसा ही चलाती है—भला इतना परहेज कौन निभा सकता है ? तुम्हें तो जैसे वे चैन की मूली भी नहीं गिनती।"

सुरेखा झमक कर भुन भुनाती हुई नीचे उतरी। लक्ष्मी उस समय भारी मुँह किए तवे पर कूटू के परांवठे उतार रही थी, आज पूरनमासी का व्रत जो रक्खा था।

"जीजी !"—सुरेखा ने तीखे स्वर मे कहा—"क्या कह दिया मिश्रानी को ? ऐसे कही नौकर टिकते हैं !"

लक्ष्मी सन्न रह गई। इतना कड़ा स्वर आज पहली बार ही उसने सुना था। यकायक वह कुछ सहम-सी गई। एक क्षण चुप रह कर बोली, "टिके या न टिके, पर मै तो अपना धर्म-कर्म नष्ट नही कर सकती !"

"नानसेन्स ! बड़ा सुन्दर धर्म है—हाथ लगते ही छुई-मुई हो जाय।"

लक्ष्मी बहुत नही बोलती है। इस घर मे वह जन्म से ही है। अम्मा और बाबूजी ने कभी उसकी बात नही टाली। उसकी बात सदैव रक्खी गई है। रखने की बात भी थी। इसी घर और घर के प्राणियों के पीछे अपनी ससुराल के भरे-पूरे घर की उपेक्षा कर दी थी उसने। इन्ही छोटे भाई बहनों के स्नेह से बँधकर वह अपनी जान को जान नही समझती थी। उसी के हाथो से सब पले थे। दो दिन की आई बहू के वचन तीर से लगे। तवे का परावठा उतार कर वह वैसे ही रसोई छोड़कर उठ गई।

सुरेखा ऊपर चली जा चुकी थी।

दोपहर होने को आई। लीला ने ऊपर आकर कहा—"भाभी, नीचे जीजी बुला रही है !"

"क्यों ?"

"कोई दो-तीन औरतें आई है।"

"अच्छा ! अभी मेरी 'मुँह दिखाई' से उनका मन नही भरा ! चल, आती हूँ !" और सुरेखा साड़ी बदलने लगी।

पूरे आधे घण्टे में ड्रेस करके सुरेखा नीचे उतरी।

'बहू, यह तुम्हारी चाची लगती है, और यह भाभी"—लक्ष्मी ने स्निग्ध स्वर में कहा, "पैर छू लो इनके।"

सुरेखा के भवों पर बल पड़ गये। दमभर चुप रहकर धीरे से उन स्त्रियों से बोली—"नमस्ते!" फिर कुर्सी पर कोहनी टेक कर खड़ी हो गई।

लक्ष्मी का मुँह लाल हो गया। सुरेखा दो मिनट खड़ी रही। फिर लीला से बोली—"लीला चलती हो हमारे साथ, मिसेज शुक्ला के यहाँ जाना है मुझे।"

लीला चुप रही। उसने बहिन की ओर देखा। लक्ष्मी से अब रहा न गया। भारी स्वर में बोली—"वह न जायगी।"

'जायगी कैसे!" सुरेखा ने तिनककर कहा--"बाहर की हवा लगेगी तो लड़की बिगड़ न जायगी!"

"यही समझ लो",—लक्ष्मी ने वैसे ही स्वर में उत्तर दिया, जब हमारे घर दो स्त्रियाँ बैठी है, सो उन्हें छोड़ कर यह कहीं नहीं जायगी।"

कुछ लोगों को दूसरों की बुराई करने में मजा आता है। उस बुराई भलाई में अपना निजी स्वार्थ चाहे न भी हो, किन्तु बिना इधर की उधर लगाए जैसे उनकी रोटी हजम नहीं होती। मिश्रानी कुछ ऐसे ही जीवों में से थी। उसे लक्ष्मी से चिढ़ थी। जब तक वह नियमपूर्वक सुरेखा से उसकी बुराई न कर लेती, उसे कल न पड़ती। यूँ तो लक्ष्मी अब सुरेखा से अधिक सम्पर्क ही न रखती थी। अपने काम से काम। फिर भी सुरेखा को ननद का कोई भी काम हो, यहाँ तक कि उठना-बैठना सभी कुछ गवारपन दिखाई देता था।

लक्ष्मी मोहना को गाय के लिए भूसा देने गई थी। मिश्रानी ने अकेला पाकर सुरेखा को सुना कर कहा—'बिना पैसे की गरमी भला किसी में इतनी तेजी हो सकती है। और जब सदा से तालों कुंजी इन्हीं के पास रही हो!"

अकस्मात् मिश्रानी का मुंह फक हो गया। लक्ष्मी की धोती का आंचल दीख पड गया था उसे। सुरेखा ने उसे चुप होते देख मुडकर देखा और तिक्त स्वर में बोली— छिपकर किसी की प्राइवेट बातें सुनने की सभ्यता इसी घर में देखी है।'

लक्ष्मी ने सतेज स्वर में उसी तीव्रता से उत्तर दिया—' और छिपकर दूसरा की बुराई करना शायद आजकल की शिक्षा में शामिल है। मैं बातें सुनने नहीं, तुमसे चाय पीने को पूछने आई थी। — और कमर से तालियों का गुच्छा निकालकर उसे झम से कमरे के फर्श पर फेंक दिया —"लो सम्भालो अपना खजाना।

"गिरीश, मैं थोडे दिन के लिए जगतपुर जाऊँगी। रमेश की चिट्ठी आई है कि बहू बीमार है।"

"तो जीजी!" गिरीश ने इतस्तत करके कहा—' फिर यहाँ का काम कैसे चलेगा ?"

'सब चल जायगा। अब तो बहू आ गई है न, आप सम्भाल लेगी।'

बहू यानी सुरेखा घर चलाएगी। गिरीश चुप हो गया।

गिरीश की चुप्पी चिटक कर सुरेखा को जैसे चिनगारी सी लगी, बोली —"नहीं जीजी, जाना मत हरगिज भी, नहीं तो देख लेना इस घर में कोई जीता न बचेगा।"

लक्ष्मी ने उत्तर नहीं दिया। अपने ठाकुरजी को पोटली में बांधकर रखने लगी।

गिरीश आफिस चला गया।

और दो बजे की ट्रेन से लक्ष्मी मोहना को लेकर अपनी ससुराल चली गई।

साढे तीन बजे बच्चे स्कूल से लौटे। घर में एक अस्तव्यस्तता-सी फैली थी। लीला ने रसोईघर झांका, पूजा की कोठरी देखी और फिर बैठ कर रोने लगी, उसकी जीजी कहीं नहीं थी।

सुरेखा माथे पर हाथ रखकर लेटी थी। उसे रोते देखकर बोली— इतनी अधिक भावुकता सचित है, तो फिर उपन्यास लिख डालो न। कुछ काम ही आएगा।"

लीला भाभी के भय से चुप हो गई। नारायण और जगदीश रसोईघर में बैठे सवेरे की रोटी खा रहे थे, क्योंकि आज जीजी तो थी नहीं, जो पहले से जीजी हलुआ बनाए रखती।

नौकर ने आकर पुकारा—"बहू जी ! गाय की सानी का सामान निकाल दो।"

सुरेखा ने ताली फेंककर कहा—"जा निकाल ले।"

नौकर घबरा गया, बोला—"जी, सानी तो मोहना करता था, मुझे मालूम नहीं कि क्या क्या देना होगा ?"

सुरेखा आज मुश्किल में फँसी। गाय का भूसा-दाना तो दूर उसने आज तक किसी को रसोई का आटा दाल तो दिया ही न था किन्तु अपनी यह अज्ञता वह नौकर को कैसे दिखाती। "अच्छा ठहरो" कहकर वह ऊपर पहुँची। पुस्तकों की अलमारी में "हमारे पशु" की एक प्रति पड़ी थी, उसे ढूँढ निकाला और पढ़ने लगी।

लीला ने तब तक दाना और भूसा निकालकर नौकर को दे दिया था, जबकि पूरे आध घण्टे बाद सुरेखा ने पुस्तक से एक सूची उतारी और लीला को पुकार कर कहा, "इतना इतना सामान गनेशी को दे दो।"

लीला ने एक बार परचा पढ़ा, फिर दीवार की ओट में मुँह करके हँसने लगी।

"हँसी क्यों ?" सुरेखा ने कुछ गुस्सा होकर पूछा, "कौन बात गलत है ? जरा बताओ न।"

"यह सेर भर बिनौले खिलाकर क्या गाय को मारोगी ?"

लीला ने किसी तरह हँसी बन्द करके उत्तर दिया—"गाय के सब
र सूज जायेंगे।"

"जी हां, बस एक आपही तो अक्लमन्द की दुम है। वह इतना
टा राइटर तो गया ही है।" सुरेखा ने तेजी से कहा और फिर झमक
र गनेशी को बुलाकर कहा—"पांच सेर भूसा, सेर भर दाल, सेर भर
नौले।"

नौकर ने अचकचा कर पूछा।

"हाँ, हाँ, सेर भर। सुनाई नहीं देता क्या।" सुरेखा का स्वर
हुत कड़ा हो गया था।

लीला ने नौकर को आंख मारकर इशारा किया। वह सुनकर
रका चला गया।

लीला टेबिल साफ करने लगी। गिरीश के आने का समय जो हो
या था।

इतने में नीचे से मिश्रानी ने पुकारा—"बहूजी! आज बाबूजी को
ाय के साथ क्या दोगी? मठरी तो परसों ही खतम हो गई थी?"

"कल क्या दिया था?" सुरेखा ने खीजकर पूछा।

"कल तो जीजी ने ताजे समोसे बना दिए थे।"

"अब"—सुरेखा कुछ सोचकर बोली—"तुम चाय बनाओ। आज
स्कुट रख देंगे।" फिर बड़बड़ाई—"सारे घर की आदत खराब कर
ई हैं महारानी! किसी के गले में बाजार का मीठा नमकीन भी नहीं
तरता और जरा इन बच्चों को तो देखो कि सवेरे को रोटी तो खाई
र बाजार से कुछ न लाया गया।"

गिरीश आ गया। कपड़े उतारने पर जब चाय सामने आई, तो
ट में बिस्कुट और थोड़ा हलुआ रखा देखा, बोला—"यह क्या लीला?
ाज नई बात क्यों?"

नोला जैसे शर्म से पानी पानी हो गई। धीरे से बोली "भइया! जीजी तो हैं नहीं और मिश्रानी ता वही अपने समय से आई, सो मैंने जल्दी से ही हलुआ कर लिया।"

गिरीश को मीठा नहीं भाता न बिस्कुट ही। वह चुपचाप खाली चाय पीकर उठ गया। सुरेखा एक तो घण्टे भर तक चाय के रसोई-भूमि की खोज म अध्ययन करते करते थक चुकी थी, उस पर गिरीश का सब छोड़कर उठ जाना।—पूरी जलती कढ़ाई का बैंगन हो गई। बिना चाय पिए ही उठ पड़ी।

'तो जीजी चली ही गई "—गिरीश ने सोचा और चुपचाप पलङ्ग पर उदास मन लेट रहा।

अब मिश्रानी की पूरी आफत आ गई। गिरीश चार साग-तरकारियों के बिना टुकड़ा नहीं तोड़ता था। लक्ष्मी ने कभी सादी थाली परोस कर खिलाना नहीं जाना, उस पर दही बड़ा, अचार, चटनी अलग, मिश्रानी सालों से सेक देती थी। बहुत हुआ तो एक-दो सब्जी भी उतार देती। सध्या को भी दूध चढ़ाकर चौका छोड़ देती थी और लक्ष्मी स्वयं ही मीठा मिलाकर सबको पिलाती और बचा हुआ जमा देती थी।

अब सब काम मिश्रानी पर था। दो दिन म ही उसके हाथ पैर फूलने लगे—

सुरेखा को भी कम मुसीबत न थी, दम-दम पर नौकर कहता—"बहूजी आज यह नहीं है, आज वह नहीं है धोबी का हिसाब जोड़ दो—और बनिये के सामान के पर्चे पर दस्तखत कर दो।"

हर दूसरे दिन मिश्रानी कहती—"बहूजी घी निबट गया लकड़ी नहीं है।"

गिरीश ने अलग उसका नाक म दम कर रक्खा था। वह हमेशा का ही लापरवाह है। अपनी किसी चीज की सम्हाल नहीं कर पाता, अब

रोज ग्राफिस जाने के टाइम पर पुकार पड़ती —"लीला !जरा मेरी कमीज में एक बटन तो लगाग्रो, ग्रौर यह लो मेरा रूमाल कहां गया, सुरेखा जरा एक रूमाल तो निकाल दो ग्रौर हत्ते रे की एक इलास्टिक ही गायब है…………।"

सुरेखा मारे गुस्से के होंठ चबाकर कहती—"इतनी भी सम्हाल नहीं रख सकते ! तुम्हें ग्रादमी किसने, बनाया था ?"

तब गिरीश धीरे से कहता—'क्या बताये हमारी सम्हाल तो जीजी कर लेती थी।"

ग्रौर सुरेखा के ग्राग जा एड़ी में लगती, तो चोटी पर जाकर बुझती "तो फिर जीजी को ही घर में । मुझे क्यों लाये थे ।"

उस दिन गिरीश जब ग्राफिस चला गया तब सुरेखा कागज कलम लेकर मीनू बनाने बैठी। ग्रब वह हमेशा का झगड़ा निपटा देगी जिस मौसम में जो तरकारियां होती हैं, उन्हें इस हिसाब से बांटेगी कि कम से कम तीन दिन तक पहली सब्जी न बन पाये। गनेशी को पुकारकर पूछा "गनेशी इन दिनों क्या क्या मिलता है बाजार में ?"

"जी"—कहकर गनेशी ने सोचा, इन्हें इतना भी नहीं मालूम ?" फिर बोला "ग्रालू, गोभी, मटर, शलगम।"

"एक एक करके बोलो न—"

नौकर चुप हो गया—

पूरे तीन घण्टे में सुरेखा ने मीनू तैयार किया पांच पृष्ठ रंग कर। उफ सिर में दर्द होने लगा उसके। गनेशी ने स्वस्ति की सांस ली ग्रौर नीचे भागा, किन्तु सुरेखा को ग्रभी छुटकारा कहां। गाय के बच्चा होने वाला है, ग्वाला कह रहा था, सो ग्रभी 'पशु-चिकित्सा' ग्रादि देखने थे। एस्प्रीन की एक टेबलेट निगलकर वह फिर कुर्सी पर ग्रा बैठी। ग्रभी दो ही पृष्ठ पड़े थे कि नीचे की निम्न पुकार ने उसका ध्यान भंग कर दिया। गनेशी चीख-पुकार रहा था- "बहूजी। लाली लौट ग्राई!"

सुरेखा पुस्तक पटक कर नीचे उतरी। देखा गाय बुरी तरह डकरा रही थी मछली-सी तडप-तडप कर पटखियां ले रही थी। सुरेखा को तो फिट पड जाने का सन्देह होने लगा अपने ऊपर—"राम करे मर जाय यह मोहना! गया सो लौटा ही नहीं—!"

ग्वाला पास ही खडा था। बोला,—"बहूजी! बुलाओ किसी को नही तो लाली बचती नही दीखती, पेट में ही उलटा हो गया है बच्चा!"

"क्या करूँ?"—सुरेखा सोचने लगी।

"बहूजी! रामचरन को बुला लूँ?"

"हिश! वह क्या करेगा? ठहरो मैं डाक्टर चटर्जी को फोन करती हूँ-"

बरावर मे टेलीफोन इन्सपैक्टर रहते थे। सुरेखा ने वही से फोन किया। डाक्टर नही मिले अब बडी मुश्किल पडी।

ग्वाला रामचरन को बुला लाया।

रामचरन मुहल्ले मे मवेशियों का डाक्टर था—बेपढा-लिखा, उसका तो यह पुश्तैनी पेशा था। उसके खानदान का हरएक बाप अपने बेटे को इसे सिखा जाता था और आशीर्वाद के रूप मे हाथ दान्स दे जाता था। सो रामचरन के साथ मे भी दान्स थी। घरेलू दवाइयाँ जानता था, अकल से नही विश्वास से काम लेता था। देख भाल कर रामचरन ने कहा—"गरम चीज देनी होगी, गैया शीत मे आ गई है। थोडा गुड मँगाओ, उसे पकाकर !"

"गुड घी! इससे तो ब्राडी ही ठीक रहेगी, गर्मी ही तो पहुँचानी है न, सो ब्राडी फौरन पहुँचाएगी—और फिर उसके नशे मे दूसरा दर्द भी हल्का पड जाएगा !"

बात-की-बात मे एक बोतल ब्राडी भी आ गई। और आधी बोतल बलात् लाली के गले से उतार दी गई! उफ! लाली ने दस मिनट मे सारा घर सिर पर उठा लिया। ग्वाले और रामचरन की

आफत आ गई। सुरेखा का जी कह रहा था कि घर छोड़कर भाग जाय और इस मोहना और जोजी को । राम राम करके लाली ने बचड़ा दिया। कई दिन बाद स्वस्थ हुई। आडो ने बुरी दशा जो कर दी थी।

आज मिश्रानी ने जवाब दिया। "यह रोग मेरे बस का नहीं है, आठ रुपये में इतना काम। सारा दिन यहाँ खप जाता है।"

गिरीश ने नाराज होकर कहा—"तो जाओ न। हमें क्या नौकर नहीं मिलेंगे?"

सुरेखा भी मिश्रानी से खुश नहीं थी। इतना सामान आता था घर में, फिर भी हर समय तगी बनी रहती थी। उसने भी कह दिया—"जाओ तुम नहीं होगी, तो क्या हमें खाना न मिलेगा?"

मिश्रानी कहाँ की भली थी। जब नौकरी ही छोड़नी, तब दबे क्यों? बोली—"मिला बस खाना। दाल में नमक छोड़ना तो आता नहीं।"

गजब! सुरेखा तिलमिला गई।

गिरीश ने कोट पहनते पहनते कहा—"अच्छा सुरेखा तो आज शाम को होटल में खा लेंगे। कल तक कोई मिसर मिल ही जायगा, क्या बताएँ लीला भी कैसे समय बीमार पड़ी है।"

सुरेखा अब सह नहीं पाई। भरे हुए स्वर में बोली—"होटल बोटल की बात गलत है। चार आदमियों का खाना ही क्या? सब बन जायगा—"

जब गिरीश आफिस चला गया, तब सुरेखा साबूदाना पकाने बैठी। डाक्टर ने लीला को बताया था। जाने कैसा साबूदाना था कि दूध में पड़ते ही जम गया। चमचा मारते मारते सुरेखा तंग आ गई, पर उसमें से पड़ीं गुठलियाँ न खुलीं। गरम गरम कई छींटे सुरेखा के मुँह पर उचट कर आ पड़े। चीखकर नौकर से बोली—"गधे! कैसा साबूदाना लाया है? नकली है एकदम।"

गनेशी सिटपिटा कर बोला—"जी! वही तो है, जो परसों छोटी बीबी ने मुन्ने के लिए पकाया था—"

"सुरेखा के तब धीरे होठ हिले—"पुराना हो गया शायद इसी से—"

लीला ने जब साबूदाना देखा, तो हँसी से उसका बुरा हाल हो गया। जैसे तैसे दो चम्मच खाए, फिर कटोरा पलंग के नीचे सरका कर लेट गई।

सुरेखा दोपहर से ही रसोईघर की शोभा बढ़ा रही थी, पाकशिक्षा, पाक चन्द्रिका, गृहिणी शिक्षा, की जिल्दें क्रम से खुली हुई थी—और हाथ में तराजू बाट। और सब सामान तोलकर हिसाब से वह ऐसा भोजन तैयार करेगी कि खानेवाले भी उँगलियाँ चाटें। सेर भर आलू में दो तोला नमक, सवा तोला धनिया, एक तोला हल्दी और पर हवा के झोंके से पृष्ठ हिल गए। सुरेखा तराजू रखकर पुस्तक फिर सम्भालती।

तीन बजे तक उसने सब तरकारियों के मसाले और समोसे का सामान छांट कर रख लिया। साढ़े तीन बजे स्टोव और अंगीठी सुलगा कर वह रसोई बनाने लगी। बड़ी मुसीबत थी। प्याज काटने से आंखें बीरबहूटी बन गई थी मसाला अलग हाथों में जलन पैदा कर रहा था, ऐनक की कमानी स्टोव की तेजी से गरम हो उठी तो उसे उतारते समय हाथ की चिकनाई से फिसल कर कढ़ाई में जा पड़ी—! उफ बड़े बिठाये सोलह रुपये का यह नुकसान हो गया।

सुरेखा ने अफसोस से दोना हाथ। पर अब हो ही क्या सकता था?

साड़ी में हल्दी के धब्बों की तो कुछ पूछो मत—इतनी गन्दी धोती उसने अपनी 'लग्न' के दिनों में भी न पहनी थी।

दस समोसे बनाए और पूरा डेढ़ पाव घी फुंक गया। जाने जीजी कैसे रोज बनाती थी, हमें तो दिवाला निकल जाय।

छः बजे तक सुरेखा ने कई तरकारियाँ बना डालीं। बस सूखे आलू जरा जल गये थे, मटर में थोड़ा शोरबा अधिक हो गया था, परवल जाने वाली थे क्या, कि दो घण्टे भूनने पर भी गोल हो रह गये थे। समोसे भी ठण्डे होकर जाने क्यों ऐंठ से गये थे। बात यह थी कि मोयन डालना

भूल गई थी। *क्या-क्या याद रक्खे सुरेखा।* दर्द से माथा फटा जा रहा था सो अलग, आज गिरीश अभी तक आफिस से न लौटा था। चाय रखी-रखी काली पड़ गई, सुरेखा की भुनभुनाहट से रसोई मुखरित हो रही थी। गनेशी और दूसरे नौकरों की टाँगें बाजार जाते-जाते तोबा बोल रही थीं। बानगी जो दिखानी थी उसे।

साढ़े छः बजे गिरीश आया। चाय और बिस्कुट भेजकर सुरेखा समोसे बनाने बैठी।

गिरीश ने कहा—"क्या होगा समोसों का, अब खाना ही खा लूँगा।" किन्तु वह मानी नहीं।

दो मिनट बाद उसने गिरीश की तश्तरी में दो समोसे रख दिये।

गिरीश ने चाय का एक सिप लेकर समोसे का टुकड़ा तोड़ा ही था कि "ओ!" करके वह कुर्सी से उछल पड़ा, फिर थू थू करता बाहर आ गया।

"क्यों क्या हुआ?" सुरेखा ने उसे आँगन में नाचते हुए देखकर पूछा।

"क्या डाल दिया समोसे में? मालूम होता है जैसे टारटैरिक एसिड में पकाए हैं।"

"तुम भी खूब हो—" सुरेखा चिढ़ पड़ी—"पहले खाना सीख लो! मैं तो खटाई से पहले वैसे दूर भागती हूँ, कसम खाने को तो डाली नहीं।"

गिरीश चुपचाप कुल्ला करके कमरे में चला गया।

इतनी सरदर्दी का यह पुरस्कार! सुरेखा के तन बदन में आग लग गई। भुनभुनाती हुई कमरे में आँचल लपेट कर पूरियाँ उतारने लगी। कमबख्त आधी से अधिक थाल में ही चिपट गई थीं, जो छूटी उनमें से भी मुश्किल से दो चार फूलीं। खैर बन गई किसी तरह।

सुरेखा ने थाल परोसकर नौकर के हाथ भेजा और कड़ाई चूल्हे पर ही छोड़कर कमरे में पलंग पर आ लेटी। इतनी मुसीबत कभी न उठाई थी उसने। हाथ में नई जगह छाले पड़ गये थे, गरम घी आ पड़ा था;

सी जलन हो रही थी। जब लेटा न गया, तो उठकर दूसरे कमरे मे चली, जहाँ गिरीश भोजन करने बैठा था कि अकस्मात् गिरीश ने थाल झन से नीचे पटक दिया। फूल का थाल गिरकर खील खील हो गया। कटोरियाँ आगन मे जा पडी

"सब चीजो मे खटाई भरी पडी है। पूरिया जल गईं सो अलग।" गिरीश ने आँगन मे आकर कहा।

सुरेखा और गिरीश मे तर्क युद्ध छिड गया। यह कहता था कि खटाई भरी पडी है, और वह कहती थी कि खटाई मैंने आख से भी नही देखी आज, डालने की बात रही अलग। लीला की जरा आख लग गई थी। गर्जन-तर्जन सुनकर लीला जाग पडी, फिर भाई भावज की गरम गरम बात सुनने लगी।

देर तक सुनने के बाद उसने पुकार कर कहा—"भाभी। तुमने क्या मसालदानी म जो डिबिया थी, उसमे से डली निकाली थी?"

'हाँ, नमक थोडा था, सो कूट कर मिला ली थी ।"

'अरे।—लीला ने कहा—"वह तो टाटरी थी।"

रात का सुरेखा को ज्वर चढ आया।

सबेरे गिरीश ने गनेशी से कहा—'जा डाक्टर चटर्जी से सब हाल कहकर दवा ले आ और सुन ले यह अर्जी श्यामसुन्दर बाबू को दे आ, दो दिन की छुट्टी ली है मैंने ...।'

और दोपहर की गाडी से गिरीश जीजी को लिवाने चला—

कमला चौधरी

१५. टेक की रक्षा

दिन प्रति दिन बढ़ते हुए जीवन के हाहाकार से ब्राह्मणी की सहन-शक्ति परास्त हो गई। शीत की तीव्र प्रचण्डता और क्षुधा की लहकती ज्वाला मे अपने बालको को भस्मीभूत होते देख माता का हृदय विदीर्ण होने लगा। अपनी जीर्ण शीर्ण फूस की झोपड़ी मे उसे शीघ्र ही प्रलय का दृश्य उपस्थित होने का आभास मिलने लगा।

दुध मुँहे गोद के बालक के लिए पेय पदार्थ का सर्वथा अभाव है। अपने सूखे स्तन पिला पिला कर भले ही बालक के रुदन को भुलावा दे ले, पर उसके प्राणो को कब तक भुलावे म रख सकेगी।

अन्य चारो बालक बालिकाओ को भी कब से अन्न के दर्शन नही हुए। शरीर पर शीत से रक्षा के लिए वस्त्र तो क्या, लाज ढकने का भी साधन नही है। स्वय उसके शरीर पर लज्जा की रक्षा करने योग्य साबित धोती नहीं है। कितने ही दिनो से एक फटी धोती, मैली भीनी धोती मे वह सिकुड़ी सिकुड़ाई झोपड़ी के भीतर ही अपने को छिपा कर लाज बचा रही है।

सरयू की स्वच्छ, सलिल-धारा समीप ही बह रही है, किन्तु लज्जा के कारण वह जल भरकर नही ला पाती। उसके अबोध बालक बालिकाएँ मिट्टी के पुराने मैले घड़े लेकर शीत-पाले से ठिठुरते जल भरने जाते हैं। वह दृश्य किसी प्रकार ब्राह्मणी से देखा नही जाता है। वह बालकों को जल भर लाने को भेज देती है, और फिर हृदय की वेदना से तड़पती हुई पृथ्वी मे आँखे गड़ाये बैठी रह जाती है।

रात्रि ने पृथ्वी को हिम कण उपहार दिये हैं और हेमन्त ऋतु के प्रात को अपना पूर्ण रूप दिखाने का अवसर मिला है।

आज मातृ वात्सल्य सम्पन्न ब्राह्मणी की ममता की आँखें नीची कर लेने मात्र से छुटकारा नहीं मिल सका। दीनता देवी का नग्न नृत्य देखने चिन्ता देवी भी जा उपस्थित हुई और स्वयं भी कदाचित् अपनी सहचरी दीनता की सहायता हेतु प्रहार कर बैठी। जिस दृश्य को देखने से ब्राह्मणी के हृदय के टुकडे से होने लगते हैं, पीडा हृदय को नोचने लगती है, उसी दृश्य को देखने के लिए वह विवश हो गई। शीत, ताप, लज्जा, दीनता सबकी बात भूल कर वह चिन्ता में डूब गई। आकाश ने सहसा उसमें तडित्-गति उत्पन्न कर दी। वह एकबारगी उठ कर खडी हो गई। भय से हृदय जोर जोर से धडकने लगा। काँपते शरीर, भयभीत मन और आकुल नेत्रों से वह झोंपडी के सरकण्डे किंचित् हटा कर सरयू की जल-धारा की ओर जाते हुए अपने बच्चों की आँखें विस्फारित करके ताकने लगी।

दोनों बालिकाएँ, जिनकी वयस अभी सात और नौ वर्ष ही की है, काई से ढँके घडे हाथ और कमर के सहारे बलपूर्वक दबाये शीत से काँपती चली जा रही है। उनके शरीर के ऊपरी भाग में कपडे का एक बालिश्त भर का टुकडा भी नहीं है। कमर में अवश्य पुरानी मैली फरिया-सी बँधी है। उसमें भी बीसियों लीरें लटक रही हैं जिनकी मरम्मत होना भी असम्भव है। उनके पीछे पीछे चल रहे हैं दोनों छोटे मोटे य जिनके समस्त शरीर पर वस्त्र के नाम को एक चीथडा भी नहीं है, कटि पर मैले काले धागा की करधनी मात्र बँधी है। वे दोनों राह में पडी वृक्षों की पतली पतली सूखी टहनियाँ उठा-उठा कर अपने नन्हे नन्हे हाथों में एकत्रित कर रहे हैं। झोंपडी में वापिस आकर व माता के सम्मुख मानो बहुत बडी निधि रख कर कहेंगे-"ले माँ आग जला दे! हम तापेंगे।" इसी विचार से बेचारे अबोध बालक संतुष्ट मन में लकडियाँ बीनने में दत्तचित हैं। उन लोगों के कोमल पैर हिम-सदृश ठण्डी ओस के भीगे रेणु-कणों पर चलने के कारण फूल कर बाने पड गये हैं। उस पर मलय समीर के झकोरे

उनके नंगे शरीर पर डंक से मार उठते हैं। शीतलता से ओत प्रोत वायु का वह प्रबल प्रहार सहन करने के लिए असहाय बालक दोनों कन्धे सिकोड़ कर, ठिठुर कर, किंचित् ठहर जाते हैं, और फिर चलने लगते हैं। मानो ब्राह्मणी के वे निरीह बालक बड़े पराक्रमी हैं, शूरवीर हैं, विजेता हैं जिनसे युद्ध करने के लिए प्रकृति देवी विकट अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित होकर उपस्थित है। दूसरी ओर साल की दुर्गन्ध से भरी फूस की झोंपड़ी के भीतर वह अपनी अनेक शक्तियों को भेजकर बच्चों की दुखिया माता को परास्त करने को आतुर है। उन शक्तियों में नाना संघर्ष प्रारम्भ है। दीनता के जिस मर्मान्तक दृश्य को माता आंखें बन्द करके भुलाने की चेष्टा कर रही थी, उसी दृश्य को चिन्ता के प्रहार ने उसे देखने को विवश कर दिया है। चिन्ता के आघात से छटपटाती हुई, वह उस दृश्य की भयंकरता को आंखें फाड़-फाड़ कर देख ही नहीं रही है, बल्कि आंखों की राह उस दृश्य के वीभत्स रस को पी रही है।

चिन्ता ने अपने अंकुश की नोक ब्राह्मणी के मस्तक में चुभो कर कहा—'बच्चे सरयू की वेगवती धारा से जल भरने जा रहे हैं। शीत के कारण उनकी शारीरिक शक्ति हिम के समान जम गई है। हाथ पैर निश्चेष्ट हो गये हैं। कहीं घड़े उनके हाथ से छूट न जायें और घड़ा को सँभालने की चेष्टा में बालिकायें बह न जायें।

इस कल्पना से विकल होकर ब्राह्मणी इस समय सब कुछ भूलकर उसी चिन्ता में निमग्न है। उनके हृदय पर सम्पूर्ण शरीर और आत्मा पर इस समय उसी आशंका का आतंक छा गया है। सम्पूर्ण इन्द्रियां भय के समावेश से झंकृत हो उठी हैं। मातृ हृदय वेदना से अत्यन्त मर्माहत हो उठा है। किन्तु लज्जा देवी अपनी मर्यादा की रक्षाहेतु उसे पूर्णतः डोलने नहीं दे रही है। वह केवल घबराई हुई धक् धक् करता हृदय लिये असहाय खड़ी दम भर रही है। उपायरहित होने के कारण असहायता, दीनता और करुणा की साक्षात् प्रतिमा सी वह खड़ी है।

इस लज्जा पर भी उसे इस समय ग्लानि सी हो रही है। मन कहता है कि इसकी उपेक्षा करके वह बाहर भाग कर अपने बच्चो को लौटाकर स्वय जल भर लाये। किन्तु साहस नही होता। फिर भी आशका विकल किये जा रही है। विधना न करे, यदि उसकी कल्पना सत्य के रूप मे परिणत हो गई, तो वह क्या करेगी? अवश्य ही लज्जा की उपेक्षा करके झोपडी से भाग खडी होगी।

ब्राह्मणी ने इस आशका को भुलाने के उपक्रम मे एक दीर्घ नि श्वास छोडकर, आँखे बन्द कर ली, दोनो हाथ जोडकर माथे से लगा लिये और प्रार्थना की—'भगवान्! मेरे बच्चो की रक्षा करो?'

आँखे खोल कर ब्राह्मणी ने देखा—बालक-बालिकाये निर्विघ्न यात्रा समाप्त कर झोपडी की ओर लौट रहे है। हास्य की हलकी रेखा अधरो पर स्फुटित हुई, किन्तु तुरन्त ही विलीन हो गई। हृदय मे सन्तोष का हलका झोका आया। किन्तु झोका मात्र था, शीघ्र ही अपना प्रभाव लेकर उड गया। बालक जल मे गिरने से बच गये है और झोपडी की ओर सुरक्षित लौटे आ रहे हैं, यह विचार उस वातावरण मे ब्राह्मणी के लिए सन्तोष का साधन था, किन्तु चिन्ता ने फिर हलका-सा प्रहार कर दिया। आशका से ब्राह्मणी का हृदय बैठने-सा लगा—'कही मिट्टी के घडे बालिकाओ के हाथ से गिर कर फूट न जायें।'

उसकी उस दयनीय अवस्था म तो वे घडे स्वर्ण कलश से भी अधिक मूल्यवान् हैं। उसके लिए उन घडो को फिर प्राप्त कर लेना फिलहाल दुर्लभ ही नही असम्भव है। कितने दिन हुए जब वह अपनी एक परिचित कुम्हारी को झरबेरी के खट्टे बेर देकर बदले मे दो घडे माँग लाई थी। अब तो वस्त्र के अभाव मे लज्जावश वहाँ तक जाना भी सम्भव नही है। इस चिन्ता ने ब्राह्मणी को बहुत ही उद्विग्न कर दिया। इस समय उसकी दृष्टि मे बालिकाओ के परिश्रम के कष्ट से भी अधिक घडो की रक्षा महत्वपूर्ण बन गई थी। यदि इस समय कोई भी बालिका

घड़ा लिए गिर पड़े और घड़ा फट जाय, तो माता को बालिका के गिरने से अधिक दुःख घड़ा फटने का होगा। जिस बालिका के जल मग्न हो जाने की चिंता मे क्षण भर पहले पीड़ा से तिलमिला कर विचलित हो उठी थी, उसी का इस समय वह घड़ा फोड़ डालने के दण्डस्वरूप क्रुद्ध होकर एक थप्पड़ अवश्य मार बैठेगी।

जब बालक बालिकाऐं निर्विघ्न यात्रा समाप्त करके झोंपड़ी के द्वार पर आ गये, तो लपक कर ब्राह्मणी ने घड़े उनके हाथ मे लेकर यथास्थान ठीक तरह रख दिये, और एक दीर्घ निःश्वास लिया किन्तु वह निःश्वास भी पूर्णतः सन्तोष का निःश्वास नहीं था। सुरक्षित जल से भरे घड़े पाकर भी विपद उसके नेत्रो से दो अश्रु-कण टपक गये जिसे बच्चो से छिपा कर फटी धोती के अंचल से पोछ कर ब्राह्मणी ने उसका चिन्ह मिटा दिया।

चिंता का अन्तिम प्रहार, और तज्जनित विपाद ब्राह्मणी के लिए बहुत ही तीखा हो उठा। फिर अनेक चिंताओं ने उसे घेर लिया।

बालको को पिता के आने पर भोजन देने का ढाढस बंधाती हुई, ब्राह्मणी आज अपनी दशा पर बहुत दुःखी होती हुई, मन-ही-मन घुटती-सी, जीविका-उपार्जन के साधन सोचनेमे निमग्न हो गई। कोई उपाय, कोई युक्ति न सूझ सकने के कारण उसने जिन सी होकर उसने निश्चय किया कि पति के आने पर आज वह उसमे कोई उपाय निकाल कर अन्न वस्त्र प्राप्त करने को कहेगी। कोई उपाय तो निकालना ही होगा। इस प्रकार जगली फल मूलों से कब तक निर्वाह हो सकता है? और वे भी तो पर्याप्त मात्रा मे प्राप्त नहीं होते। आये दिन उपवास करना पड़ता है। इस प्रकार तो निर्बल हो-होकर धीरे धीरे सभी का प्राणान्त हो जायगा। भले ही लज्जा और मर्यादा को तिलाञ्जलि देना पड़े माता अपनी आंखो के सम्मुख सन्तति को क्षुधाग्नि से झुलस-झुलस कर मरते कैसे देख सकेगी?

इस समय उसे यदि एक साबित धोती ही प्राप्त हो जाय, तो वह कपास एकत्रित करके किसी से चरखा मांग कर सूत कात ले, और जनेऊ

बनाकर पति को बेच आने के लिए दे दे, धर्म की मर्यादा के पालन हेतु, अब तक उसने किसी की चाकरी और सेवा नही की है किन्तु अब बच्चा की प्राण रक्षा हेतु विवश होकर वह भी स्वीकार करेगी। दूसरा का अन्न कूटेगी, पीसेगी। किन्तु यह सब होकैसे ? इस समय तो घर से बाहर पैर रखने का साधन भी नही जुट रहा है।

चिन्तातुर होकर ब्राह्मणी बच्चो की ओर से मुख फेर कर फफक फफक कर रोने लगी। बच्चे आग तापते हुए पिता के आने की बाट जोह रहे थे।

सहसा ब्राह्मणी के कानोंने भारी कोलाहल का आभास पाया। हृदय में कौतूहल लिये, कारण जानने के लिए, उसने फिर सरकण्डो और फूस के बीच के छिद्र से बाहर दृष्टि डाली। देखा—राज प्रासाद के समीप वाले तट पर मनुष्यो की भारी भीड़ एकत्रित है। उन्ही के कण्ठ-स्वर कोलाहल उत्पन्न कर रहे हैं।

सरयू तट की सूखी रेणुका पर भाँति-भाँति की सामग्रियाँ बहुत बड़े परिमाण में एकत्रित की गई हैं। सभी प्रकार की उपयोगी वस्तुएँ वहाँ लाई जा रही हैं। अन्न वस्त्र, धन धान्य, स्वर्ण चांदी, हीरे-जवाहरात तथा बहुमूल्य आभूषणो के वहाँ ढेर लगे हैं।

ब्राह्मणी लालायित नेत्रो से दूर तक दृष्टि दौड़ा कर भली भाँति उन वस्तुओं का अवलोकन करने की चेष्टा करने लगी। उसके मन ने जैसे आज ही जाना कि अयोध्या में धन धान्य का अभाव नही है। उसके जीवन में ऐसी वस्तुएँ इतने बड़े परिमाण में देखने का यह पहला ही अवसर था। यह दृश्य उसके लिए सर्वदा नवीन था।

कौतूहल निवारण की चेष्टा से ब्राह्मणी ने अपनी बड़ी कन्या मन स्विनी से कहा—'पुत्री बाहर जाकर किसी दर्शक से पूछकर शीघ्र आओ कि राजगृह की यह सम्पत्ति इस प्रकार सरयू के तीर पर क्यो लाई गई है।'

मनस्विनी तुरन्त ही अपने बहिन भाइयो के साथ बाहर भाग गई। और लौट कर जो सम्वाद सुन आई थी, वह अपने शब्दों में माता को

सुनाने लगी—"मां, महाराज दशरथ ने अपने ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्रजी को चौदह वर्ष का वनवास दिया है। रामचन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मण और अपनी स्त्री सीता के साथ आज वन यात्रा करेंगे। राम, लक्ष्मण और सीता अपनी सब सम्पत्ति ऋषियों, ब्राह्मणों और दीन-दुखियों को दान कर रहे हैं। यह भारी भीड़ दानार्थियों की एकत्रित है।"

ब्राह्मणी के हृदय में लालसा की उद्वेग हिलोरें मारने लगा, अभाव-पूर्ति के लिए व्यग्र हो उठी। उसने आतुरता से कहा—"बच्चो' सब लोग जाओ और शीघ्र ही अपने पिता को ढूंढ कर बुला लाओ। वह भी आकर राजकुमार रामचन्द्र से दान में ये सब वस्तुएँ प्राप्त करे, तो हमारे दुःख दूर हो जायें।"

बच्चों के मुख में स्वयं ही दूर से खाद्य सामग्रियों को देख-कर पानी भर-भर आ रहा था। आंखें उसी ओर देखने को मचल रही थी। माँ के मुख से ऐसी बातें सुनकर वे प्रसन्नता में पिता को ढूंढने चले गये। किन्तु मनस्विनी कुछ चिन्ता में पड़कर चुपचाप खड़ी रह गई। उसे इस प्रकार खड़ी देखकर अधीर होकर, माता ने ताड़ना के शब्दों में कहा—"पृथ्वी की ओर क्या निहार रही है, दुष्टा! शीघ्र भाग कर जा। तेरे पिता समीप ही के किसी वन में फल मूलों का अन्वेषण कर रहे होंगे। उन्हें शीघ्र बुला ला। तू अपने बहिन-भाई में सबसे बड़ी है, किन्तु बुद्धि में सबसे हीन जान पड़ती है।"

माता की कुटिल दृष्टि देखकर डरते हुए पीड़ित वाणी में मनस्विनी ने कहा—'मां, तुम तो हम लोगों को सदैव उपदेश देती हो कि भिक्षा-वृत्ति बहुत दूषित कर्म है और क्षुधा से प्राण दे देना उत्तम है, किन्तु किसी के सम्मुख हाथ फैलाना उचित नहीं है। पिता को कितनी बार मैंने कहते सुना कि भगवान् ने मनुष्य को परिश्रम करने के लिए यथेष्ट शक्ति दी है। बिना परिश्रम के अन्न ग्रहण करना अखाद्य खाने के बराबर है। फिर तुम आज पिता को अन्न-वस्त्र मांगने के लिए क्यों भेजना चाहती हो, मां?"

बालिका की बात सुनकर ब्राह्मणी क्षण भर को स्तब्ध रह गई। मन-ही मन वह अपनी भूल अनुभव करने लगी। किन्तु तुरन्त ही बुद्धि ने फिर दीनता के लगातार होने वाले प्रहारों का स्मरण कराया। ब्राह्मणी सावधान हो गई। उसने इस बार दुलार से कहा-- यह बात दूसरी है पुत्री! भिक्षा मे और सम्मानपूर्वक श्रेष्ठजनों के हाथ से धन लेने म बहुत अन्तर है। तेरे पिता का गर्ग गोत्रीय वंश में जन्म हुआ है। ब्राह्मण सर्वथा दान लेने का अधिकारी है। तू शीघ्र ही पिता को बुला ला।

वार्तालाप म सफलता प्राप्त करके भी ब्राह्मणी को लगा, जैसे मनस्विता के साथ हो, बुद्धि की युक्ति द्वारा, वह अपने हृदय को भी छल रही है। अब तक दान ग्रहण करना ही उन लोगों ने अपना सम्मान माना होता तो क्या प्रजापालक राजा दशरथ के समृद्धिशाली राज्य मे वे इस दीन अवस्था को प्राप्त होते? कितनी ही बार तो उसने राजगृह मे अनुष्ठान और दान-पुण्य होने की बात सुनी है, किन्तु इससे पूर्व कभी भी उसके मन म दान लेने की अभिलाषा उत्पन्न नही हुई थी।

फिर भी ब्राह्मणी तत्परता से इस विचार का सर्वथा भूलने की चेष्टा करने लगी। उसने निश्चय कर लिया कि इस विषय मे अपनी पुरानी धारणा को पराभ्त कर इस समय वैसे विचारो पर उपयोगिता की विजय करना ही उचित है। अपने साथ ही उसे अपने पति की चिरसंचित धारणा के साथ सघर्ष करना पडेगा। उनके विचार-परिवर्तन के लिए दृढ़तापूर्वक तटस्थ रहने की आवश्यकता है।

ब्राह्मणी ने, जो स्वय भी अब तक पति की दान न लेने वाली प्रवृत्ति की समर्थक थी, इस समय पति की उस टेक के विरुद्ध हठ करने का सकल्प कर लिया। वह सोचने लगी कि किसी प्रकार आज उनके बीच ऐसा प्रसग उठे ही नही, तो उत्तम हो। पतिदेव उस धारणा के महत्व को ही नही, बल्कि उस धारणा ही को बिलकुल भूल जायें, उनकी बुद्धि पर इस विचार की ओर से पर्दा पड जाय।

वह इसी प्रकार की कल्पना कर रही थी कि उसी समय ब्राह्मण त्रिजट ने झोपड़ी में प्रवेश करके कातर स्वर में कहा—"ब्राह्मणी, आज तो कदाचित् बच्चा को भी उपवास ही करना पड़ेगा। प्रात से अब तक लगातार परिश्रम करने पर भी आज फल फूल प्राप्त नहीं हो सके। केवल कैथे के दो कच्चे फल और कुछ लकड़ियां ही पाये हैं। उपवास करते-करते मेरी शारीरिक शक्ति अब हार सी मान रही है। परिश्रम के कारण मुझे कुछ ज्वर हो आया है। मस्तक में पीड़ा हो रही है और आंखों में पृथ्वी घूमती जान पड़ रही है। रुग्ण होने के कारण परास्त होकर मैं वन से लौट आया हूँ। मुझे सरयू का कुछ जल ही पान कराओ। कुछ स्वस्थ होकर फिर वन में जाकर फल मूल लाने की चेष्टा करूँगा।"

ब्राह्मणी को इस समय पति के वचन अनावश्यक और व्यर्थ से जान पड़े। रोग की बात असामयिक सी लगी। रुग्णता की बात सुनकर मन में सेवा भाव उत्पन्न नहीं हुआ, न उसे शीघ्र ही विश्राम कराने का उपक्रम करना ही आवश्यक प्रतीत हुआ, वह चाह रही थी कि किसी प्रकार पतिदेव अपनी वार्त्ता समाप्त करें, उनकी जिह्वा का क्रम रुके, तो वह अपना आग्रह प्रकट करके दीनता निवारण का उल्लेख करे। उस समय उसका मन, प्राण तथा समस्त इन्द्रियां सङ्कट में छुटकारा पाने को विकल हो उठी थीं। उसका हृदय दीनता के विकराल बाण सहते सहते क्षत विक्षत हो रहा था। क्षुधा से व्याकुल अबोध बच्चे की हृदयग्राही दशा के परिणाम की कल्पना में उसके धैर्य का अन्त हो गया था। सहन-शक्ति जैसे सदैव को उसके अन्तर से विदा हो चुकी थी।

पति के सिर से लकड़ियों का बोझ उतरवाते हुए, उसने व्यग्रता से कहा—"आप किंचित् ढाडस रखकर सहनशक्ति से काम लीजिये। भगवान् ने आज हम लोगों के क्लेश निवारण करने का विधान रचा है। वह देखिए सरयू के तट पर राजकुमार रामचन्द्र बहुत बड़े परिमाण में सम्पत्ति दान कर रहे हैं। दानार्थियों का विशाल समूह वहां एकत्रित है। आप भी जाइये और रामचन्द्रजी से अपना नाम, वंश तथा जीविका को

अभाव से परिवार की दुर्दशा का वर्णन करके यथेष्ट सम्पत्ति दान में पाइये, तो हम लोगों के कष्ट दूर हों और बच्चों की प्राण रक्षा करें। फिर इस प्रकार नित्य आपको जंगली फल मूलों के लिये भटकना नहीं पड़ेगा।

हाथ का फाल और कुदाली एक ओर फेंककर ब्राह्मण त्रिजट धम से पृथ्वी पर गिर सा पड़ा और हाँफते हुए उसने फिर जल की ओर संकेत किया। जल पीकर भी जब त्रिजट वृद्ध सोच में डूबा हुआ निरंतर ही बैठा रहा उसने जाने का उपक्रम नहीं किया, तो ब्राह्मणी उत्तेजित होकर दुःख से अकुला उठी। उसने तीव्र स्वर में कहा—"आप देर क्या कर रहे हैं। देखिये न, श्रेष्ठ राजकुमार और मनस्विनी सीता ने दान सामग्रियों का वितरण करना आरम्भ कर दिया है। क्या जब सब समाप्त हो जायेंगी, तब आप जायेंगे? अपने शरीर को दृढता पूर्वक सँभालकर साहस से काम लीजिये।"

सोच में डूबे हुए ब्राह्मण त्रिजट ने आश्चर्य की मुद्रा में कहा—"यह आज तुम्हारा कैसा आग्रह है, ब्राह्मणी? मेरा वहाँ जाना क्या तुम्हें उचित जान पड़ रहा है? अपने परिश्रम के ही बल पर जीवन निर्वाह करना मेरा नियम रहा है और तुम भी इसी विचार की समर्थक थी। फिर आज यह कैसी बात कर रही हो?"

ब्राह्मणी प्राणपण से युक्तिपूर्वक त्रिजट के इस विचार को समय के विपरीत ठहराने की चेष्टा करने लगी। बोली—"वहाँ इस समय बड़े बड़े श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मण और ऋषि मुनि दान ले रहे हैं। फिर आप जैसे दान व्यक्ति का दान ग्रहण करने में अपमान क्या है? इस दान में तो राज धन है। स्वयं राजकुमार अपने हाथ से दान दे रहे हैं। प्रजा का पालन पोषण करना राजा का धर्म है। राज धन ब्राह्मणों को ही नहीं, सारी प्रजा के लिये ग्राह्य है। दान का लक्ष्य दान-दुखिया और ब्राह्मणों को सुखी करना होता है। राजा स्वयं ही जब प्रजा के क्लेश निवारण के उपाय में संलग्न हो और प्रजा अभिमानवश उसे अपनी

भामास ही न होने दे तो यह प्रजा को बुद्धिहीनता और राजा के लिए निन्दा की बात है। अत आप सारा संकोच त्याग कर तुरन्त ही जाइये, और रामचन्द्र से अपनी दीनता का वर्णन कीजिये।

"अपने परिश्रम से जो कुछ प्राप्त हो, उसी पर सन्तोष करना मनुष्य स्वभाव का उत्तम लक्षण है, किन्तु ऐसी विकट परिस्थिति में जब खानपान के अभाव से निर्बोध बच्चे घुल रहे हो, तो उस समय भी अपनी टेक लेकर निरुपाय बैठे रहना श्रेष्ठता नही, कायरता है, आलस्य है। अन्न-वस्त्र प्राप्ति का साधन सम्मुख उपस्थित होने पर भी उसकी उपेक्षा करके बच्चों को उपवास कराना कहाँ का न्याय है, स्वामी ?

"उपयुक्त खाद्य सामग्री न मिलने के कारण इनके शरीर सूख सूख कर पिंजरमात्र रह गये हैं। नित्य-प्रति अबोध बच्चों को क्षुधा से विकल देख कर भी अपनी टेक के कारण चुपचाप बैठे रहना क्या शोभा देता है ? इस समय तो आपके लिए मान सम्मान धर्म-कर्म, कर्त्तव्य, सब कुछ क्षुधा से व्याकुल अपने बच्चों को भोजन दिलाना है। देखिये, गोद का बालक निर्बलता के कारण जोर से रोने की भी शक्ति खो चुका है। इसके होठ सूख रहे है। यदि तुरन्त ही इसके लिए दूध का कुछ उपाय न हुआ, तो इसकी प्राण रक्षा कैसे होगी, स्वामी ? आप पातक के भागी होंगे, और ससार मे भी निन्दा के पात्र बनेंगे।'

यह सब कह कर ब्राह्मणी मार्मिक स्वर मे विलाप करने लगी। ब्राह्मण त्रिजट का हृदय वेदना से विकल होकर खण्ड खण्ड सा होने लगा। व्याकुल स्वर म उसने कहा—"चुप रहो ब्राह्मणी ! मैं तुरन्त ही जाता हूँ। तुम सत्य कहती हो। इस समय बच्चों की प्राण-रक्षा करना मेरा प्रमुख कर्त्तव्य है। भगवान् ने शायद मेरा अभिमान चूर्ण करने के लिए ही मुझे ऐसे घोर सकट मे डाला है।"

विकल हृदय से एक दीर्घ नि श्वास छोड़कर, त्रिजट जाने का उपक्रम करने लगा। किन्तु सहसा अपने शरीर की ओर दृष्टि डालकर रुक कर

खड़ा हो गया, और अपनी असहायता पर बहुत ही विकल होकर कहने लगा—इस अवस्था मे रामचन्द्रजी के सम्मुख इतने मनुष्यो के बीच मे कैसे जाने का साहस करूँ ब्राह्मणी ? अपनी इस दशा पर मुझे अत्यन्त लज्जा उत्पन्न हो रही है। वृक्ष की छाल की लगोटी मात्र बाँधे देखकर मुझे ब्राह्मण कौन समझेगा ? जगली कोल भील आदि समझकर राजकर्मचारी मेरा अपमान करेंगे और मुझे उनके समीप जाने न देंगे।"

निरुपाय सा होकर त्रिजट माथा पकड़ कर स्तब्ध खड़ा रह गया। ब्राह्मणी ने तुरन्त ही साहस से काम लिया। मातृ हृदय ने, जो इस समय सन्तति की जीवन रक्षा के सम्मुख सब-कुछ अर्पण करने को विवश था, एक उपाय खोज लिया। पति को धैर्य बँधाने के लिए मृदु शब्दो म उसने कहा—' ब्राह्मण के लिए माथे पर चन्दन का तिलक और गले मे यज्ञोपवीत भर यथेष्ट है। आपके पूजा वाले मृग चर्म को लपेट कर मै अपनी धोती आपको दिये देती हूँ। इसे लपेट लीजिये। किंचित् धैर्य धारण करके साहसपूर्वक आप रामचन्द्रजी के समीप जायें। वह ब्राह्मणो की प्रतिष्ठा और आदर सम्मान करने के लिए विख्यात हैं। वह तुरन्त ही आपके कष्ट का सदैव के लिए निवारण कर देंगे।

त्रिजट के चले जाने पर ब्राह्मणी ने दोनो हाथ ऊपर उठा कर मन ही मन कहा—'देव, दीन की लाज रखना न रखना, तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है। इस समय तो मेरे पति को वहाँ तक पहुँचाने की दृढ़ता ही प्रदान करो ! भगवान्, दीनता मे युद्ध करने का अब हम मे साहस नही है हमारा अपराध क्षमा करो।'

दीन त्रिजट फटी धोती को बार बार अपने हाथ से सँभालता, लज्जा से मस्तक नीचे झुकाये हुए किसी प्रकार रामचन्द्रजी के सम्मुख उपस्थित हुआ, और सकुचाते हुए हाथ जोड़ कर अस्फुट वाणी मे रामचन्द्रजी से कहने लगा—"हे नर श्रेष्ठ राजकुमार रामचन्द्र ! मै समीप ही सरयू के किनारे फूस की एक झोंपड़ी मे बसने वाला दीन ब्राह्मण हूँ। मेरे स्त्री है

और अनेक पुत्र-पुत्रियाँ है। जीविका के अभाव के कारण मै जंगल फल मूलो पर ही अपने परिवार का निर्वाह कर रहा हूँ। परिश्रम औ उपवास करते करते मै अत्यन्त निर्बल हो गया हूँ। देखिये, मेरे शरीर व रग पीला पडा गया है। मेरे बच्चे अन्न-वस्त्र के अभाव से, क्षुधा औ शीत से बहुत ही व्याकुल होकर रो रहे हैं। मै क्षुधाग्नि से उनकी रक्ष करने मे बिलकुल असमर्थ हूँ। आप ।"

दीन त्रिजट अपना कथन भी पूर्ण न कर सका। बीच ही मे नरश्रे रामचन्द्र खिलखिला कर जोर से हँस पडे। रामचन्द्रजी की इस हँसी वहाँ उपस्थित सारा जन समुदाय रामचन्द्रजी का मुख देखने लगा औ दीन हीन, असहाय ब्राह्मण त्रिजट अपमान और उपेक्षा अनुभव कर बहुत ही लज्जित और रुआँसा हो गया। उसके मन को लगा कि य आज उसे इस प्रकार विवश होकर रामचन्द्रजी से दान माँगने के लिए आना पडता, तो क्यो उसका आत्म-सम्मान नष्ट होता, क्यो उसकी दी दशा, उसका वह लज्जा भाव रामचन्द्रजी की आँखो मे हास्य-जनक ब उठता। अपमान की लज्जा ने उसकी मनोदशा को असहायता की चर सीमा पर पहुँचा दिया। किन्तु इस समय अपमान के शोक ने उसके म मे क्रोध उत्पन्न नहीं किया, बल्कि ग्लानि से उसका हृदय फटने लग आँखे और भी पृथ्वी मे गड गई, और मनमे कहने लगा—'रामचन्द्र ही की भाँति यहाँ एकत्रित सम्पूर्ण जन-समुदाय मुझ पर हँस रहा है कदाचित् यहाँ उपस्थित सभी मनुष्य और स्वय रामचन्द्रजी मुझे बावल और अत्यन्त हीन मनोवृत्ति का भिखारी समझ रहे है। मानो निर्धनत के दोष से उत्पन्न हुए सारे ही अवगुणो का मैं समूह हूँ। वे मुझे अत्यन् कायर, आलसी और असत्यभाषी समझ रहे है। उनकी आँखो मे आडम्बरधारी, लोभी और दुराचारी भिखारी बन गया हूँ। इस कार दान को ग्रहण करने का पात्र न समझकर ही रामचन्द्रजी मुझ पर हँ पडे है, नहीं तो श्रद्धापूर्वक तुरन्त ही वहीं मुझे दान देने को उत्सुक ह उठते। मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी तो विप्रो का मान-सम्मान औ

मर्यादा रखने में विख्यात है। तभी यहाँ उपस्थित तेजस्वी ब्राह्मणगण भी ब्रह्मत्व का अपमान होते देखकर भी क्रोधित न होकर निःशब्द खड़े हैं।"

इन विचारों से अत्यन्त मर्माहत होकर ब्राह्मण त्रिजट मूर्छित-सा होकर पृथ्वी पर गिरने लगा। उसी समय रामचन्द्रजी ने त्रिजट का हाथ पकड़ कर मुस्कराते हुए सारे जन-समुदाय को आश्चर्य में डालने वाली बात कही-'हे पराक्रमी द्विजवर त्रिजट ! ब्रह्मत्व के नाते तुम अपना शौर्य छिपा रहे हो। किन्तु ब्राह्मण-श्रेष्ठ, मेरी इच्छा तुम्हारे बाहुबल का दिग्दर्शन करने की है।

त्रिजट सहसा चौंक उठा। लज्जा के वशीभूत हो, जिज्ञासापूर्ण दृष्टि उसने रामचन्द्रजी के मुख पर डाली। रामचन्द्रजी इस समय भी मुस्करा रहे थे, किन्तु त्रिजट को उस मुस्कान में अपमान और परिहास के भाव दृष्टिगोचर नहीं हुए, बल्कि उस मुस्कान में एक रहस्य का आभास प्रतीत हुआ। अतः उसमें किंचित् शक्ति और साहस का संचार होकर लज्जा तथा ग्लानि का वेग शिथिल होने लगा।

समीप खड़े एक व्यक्ति के हाथ से गौ घेरने का डण्डा छीनकर रामचन्द्रजी ने त्रिजट के हाथ में देकर कहा—"अपनी जिन भुजाओं को तुम बहुत ही निर्बल, शक्तिहीन बता रहे हो, उन्हीं से इस डण्डे को भ[illegible] भर दूर फेंक कर बाहुबल की परीक्षा तो करो। देखो, यहाँ से सरयू के उस पार तक गौओं के समूह खड़े हैं। मैं वचन देता हूँ कि तुम्हारी फेंकी लकड़ी जिस हद तक जाकर गिरेगी, उसकी समस्त गौओं पर तुम्हारा अधिकार होगा।"

रामचन्द्रजी के इन प्रोत्साहनयुक्त शब्दों से त्रिजट में पराक्रम उत्पन्न हो गया। उसे जान पड़ा कि उसकी बाहुओं में कोई दिव्य शक्ति छिपी है, जिसका आभास पाकर अन्तर्यामी रामचन्द्रजी मुस्करा उठे थे और अब उसे उस शक्ति का स्मरण कराके प्रोत्साहन दे रहे हैं। इस विचार ने उसके गिरते हुए रुग्ण शरीर में अद्भुत उत्तेजना का संचार किया।

एक बलिष्ट योद्धा की भाँति त्रिजट ने अपनी उस फटी धोती को समेट कर कटि पर कस लिया, और रङ्ग बिरंगे झूलो और चाँदी की हमेलो से सुसज्जित स्वर्ण मण्डित सीगो वाली हृष्ट-पुष्ट गौओ पर एक दृष्टि डालकर, परम साहस और विश्वास के साथ बलपूर्वक अपने हाथ के डण्डे को द्रुतगामी गति से फेका।

दैवयोग से त्रिजट को फेकी लकडी सरयू की विशाल जलधार के उस पार गौओ की एक बडी गोष्ठी के बीच मे खडे बैल के समीप जाकर गिरी।

सारी भीड हर्ष-ध्वनि कर उठी। रामचन्द्रजी ने त्रिजट को हृदय से लगाकर कहा—"ब्रह्मदेव त्रिजट, तुमने अपने बाहुबल मे असंख्य गौओ की बाजी जीत ली है। तुम्हे बधाई है।"

सोलह सहस्र गाये पाकर ब्राह्मणी और उसके बच्चो के हर्ष का पारा वार नही रहा। और त्रिजट का हृदय अपनी टेक की रक्षा करने वाले, स्वाभिमान की रक्षा करने वाले, और दीनता के प्रलयकारी प्रहार से परिवार का उद्धार करने वाले, महाराज रामचन्द्रजी के प्रति श्रद्धा और भक्ति मे परिपूर्ण हो उठा।
